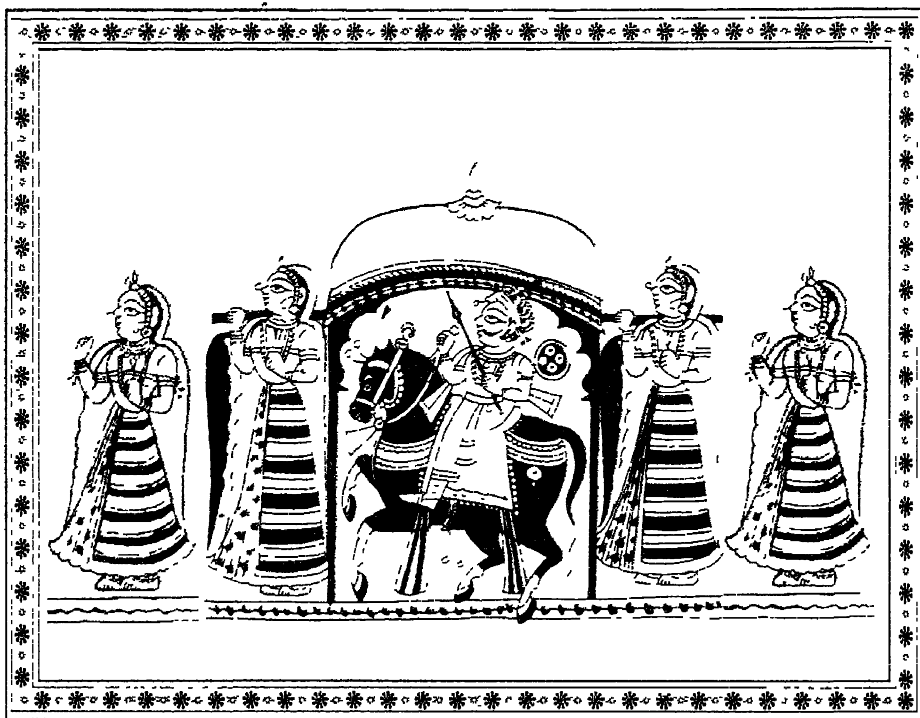
भारती-विलासः



पण्डित श्रीराम दवे

मनुष्य भगवान् की सृष्टि मे एक नई सृष्टि करता है . ये वड़े-वडे भवन महान् नगर, वैज्ञानिक आविष्कार जो मनुष्य के चिदाकाश मे अव्यक्त शब्दो के रूप मे विद्यमान रहते है । हम जो सोचते है शब्दो मे ही सोचते है । विचार या योजनाएं अन्तःकरण मे शब्दो के रूप मे ही उठती है । फिर कागज पर विभिन्न रेखाओ या शब्द चित्रो मे व्यक्त होती है । समस्त आविष्कारो का बीज या मूलभूत विचार या योजना, मनुष्य के चिदाकाश मे सूत्रात्मा के रूप में, व्यापक, शब्द ब्रह्म, वाक् या ओम् है, जो समस्त वेदो या विद्याओ का मूल उद्‌गम है ।

यह सृष्टि किसी महान् कवि की विलक्षण कविता है । अनन्त ब्रह्माण्ड, ग्रह नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि एक ऐसे केन्द्रस्थ, अटल नियम मे बन्धे हुए है । जैसे रासमण्डल में केन्द्रस्थ कृष्ण के चारो ओर गोपियो मुरली के तार स्वर पर नृत्य कर रही हो । सृष्टि के इस काव्यमय या संगीतमय ताने-बाने को वेदो मे सप्त तन्तुमय यज्ञ कहा गया है । एक मन एक प्राण और पाच भूत इन सात तन्तुओ से कोई बुनने वाला इस सृष्टि पर को बना रहा है । पंचभूतो को वैदिक भाषा मे वाक् भी कहते है । युगयुगो से चली आ रही सृष्टि किवा आज के युग की विलक्षण भौतिक सृष्टि का मूल वाक् है, शब्द ब्रह्म है । वेदो मे भी कहा गया है "वागवेद सर्वम्" ।

इसी वाक् को आगमो में सिद्धमातृका कहा गया है । वही अकरादि क्षकारान्ता वर्णमातृका, भारती भी कही गई है । इससे ही चराचर सृष्टि का निर्माण हुआ है ।

अकारादि क्षकारान्ता मातृकाबीजरूपिणी ।
विसर्गश्चैव बिन्दुश्च त्रिशक्तिब्रह्मविग्रहः ॥
वर्णात्तु जायते ब्रह्मा, तथा विष्णुः प्रजायते ।
रुद्रश्च जायते तस्मात् जगत्सहार कारकः ॥

(कामधेनुतन्त्र)

अतः यह समस्त सृष्टि, समस्त आविष्कार, साहित्य आदि इस भारती की ही विलाल लीला है ।

—श्रीराम दवे

भारती-विलासः

कवयिता पं. श्रीराम दवे

पुराणपोषिणी क्वापि, नवतोन्मेषिणी क्वचित् ।
युगानुरूपं संधत्ते नानारूपाणि भारती ॥

राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर

प्रकाशक

राजस्थानी ग्रन्थागार

प्रकाशक एवं वितरक

सोजती गेट जोधपुर (राज.)

फोन कार्यालय 623933

निवास 432567

E-mail: rgranthagar@satyam.net.in

रचयिता पं. श्रीराम दवे

559-B श्री निकेतन

6-C रोड, सरदारपुरा जोधपुर (राज)

फोन 432520

प्रथम संस्करण जुलाई 2002

मूल्य : एक सौ पचास रुपये मात्र (150.00)

लेजर टाइपसेटिंग

सूर्या कम्प्यूटर

जोधपुर. फोन 622171 (R)

मुद्रक

एम एन प्रिन्टर्स

नई दिल्ली

BHĀRTĪ - VĪLĀS — **Pt. Sriram Dave**

Published by **Rajasthani Granthagar, Jodhpur**

First Edition **2002** **Price : 150.00**

भारती-विलासः

पञ्चाशद् वर्णभेदैर्विहितवदनदोः पादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दाकलित-शशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्रक् कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्थाम्,
अच्छाकल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारती तां नमामि ।।

शब्दब्रह्मविलास-लीला-वलयितमेवावस्ति सकल जगतीतलम्। गण्यन्ते च आदिक्षान्ता वर्णाविन्दवः एव समस्त विश्वसाहित्यसागरसभूतेः हेतवः। अस्य अक्षरशशिन ज्योत्स्नयैव भाममानमस्ति खलु एतत् ब्रह्माण्डमण्डलम्। उक्तञ्च आगमेष्वपि—

सर्वं चराचरं विश्वं वर्णात्तु जायते ध्रुवम्।
वेदञ्च स्मृतिशास्त्रञ्च ह्यन्यानि यानि कानि च ।।
अक्षराज्जायते सर्वं परं ब्रह्म स्वयं शिवः।
माता च सर्वविद्यानां सर्वागमप्रतिष्ठिता।
मातृका-वर्ण-रहितं ब्रह्माण्डं शववत् प्रिये ! ।। (कामधेनुतन्त्रम्)

निखिलमपि प्राचीनमर्वाचीन वा ज्ञानविज्ञानसाहित्य वर्णात्मि काया. भास्त्या. एवास्ति विलसितमिति सम्यक् प्रतिपादितमस्ति निगमागमशास्त्रेषु। नादब्रह्मणः लीलायितमेवेद निगमागम-पुराणेतिहास-साहित्य-सगीतकलादिक लोके व्यवह्रियमाण शास्त्रम्। वैखरी वागेव विलोक्यते विविध-व्यवहार-विहार-विनोद- नोदिनी विलक्षणा

शक्तिः। कालकवलितानपि विश्वव्यापारान् परिपालयति स्वकीये वाङ्मयगर्भे अखण्डमौभाग्यवनीय वाग्देवी भारती। अस्याः प्रसादादेव अवाच्यम्, अनिर्वचनीयम् इद ब्रह्म वाच्यता वृणुते। इयमेव देवता स्वमायया निर्गुण निर्विकल्प निराकार, परमेश्वर सगुण सविकल्प साकार सम्पादयन्ती रञ्जयति मानवाना मनासि।

विश्वविदितं खलु अस्या· नानारूपवत्याः भारत्या· वर्णवैभवाश्रित विलसितम्। मन्त्ररूपमुपेता, रश्मिकलासवलिता इय भारती कि कि न साधयति साधकानामुपासकाना वा चतुर्विधपुरुषार्थ-परिपूर्तये। अमूल्यानि खलु रत्नानि निह्नुतानि अस्याः वर्णमातृकारूपायाः भारत्याः वर्णवारिधिगर्भे।

भारत्याः प्रसादेनैव मानवेन विदितं प्रकृतिनिहित लावण्यम्। इयमेव प्रणवरूपेण हसरूपेण च प्राणपोषिणी जाता तपोघनाना योगिनां यतीनाञ्च।

अस्याः अनुग्रहेणैव वियति भासमानानां सूर्यचन्द्रादिग्रहाणा अश्विन्यादि-नक्षत्राणांञ्च आधिभौतिकम् आधिदैविकम् आध्यात्मिकञ्च स्वरूप विदित भूतलस्थै विबुधवरैः।

कवितारूपमुपेता इयं भगवती भारती स्वकीयैः विविधैः वृत्तिव्यापारै· नानाविधैः वर्णमातृकाछन्दोबन्धनैः, अनेकैश्च रसालङ्कारगुणदोषादि-विधानैः रञ्जयति सहृदयाना हृदयानि।

विश्ववल्ली कुसुमकण्टक करकादिभिः कुण्ठितामपि इमां जडां प्रकृति, विधाय विविधालंकार-मण्डिता, लावण्यलीला-वलायितां, नाटयति ललामललनामिव कविवागालम्बितेयं नादब्रह्मणो भामिनी।

युगपरिवर्तनेऽपि विश्वसृष्टुः सहयोगसम्पादिनीव युगानुरूप दिशति परिवर्तनपन्थानम्। इयमेव प्रणोदयति मनुजानां मेघां नवोन्मेष विभावनाय।

अस्मिन् यान्त्रिके युगेऽपि अभूतपूर्वाणां भौतिकसाधनाना सिद्धिसम्पादने, परमाण्वादीनां लोकसंहारकारकाणां शस्त्राणां समुद्भावने, द्रुतगतीना, यन्त्रयानानां निर्माणे, विश्वव्यापार-प्रकाशकानां वृत्तपत्राणां प्रकाशने, मनुजमनोवृत्ति-परिवर्तनाय तर्कवितर्क वलयितानां नवनवानां वादानां विश्वतो विजृम्भणे, अर्थकामोपभोगजनकानां बहुविधसाधनानां परिसञ्चयने, साहित्यसंगीतनाट्यादिमनोरञ्जकव्यापाराणा नवविध-परिवर्तनकलने, शब्दब्रह्मणो मायायाः अस्याः भारत्याः विलासा· एव कारणीभूताः।

राजतन्त्रपरिवर्तनेऽपि प्रभवन्ति अस्या एव निह्नुतानि कलितानि । अस्ति सा एव धरा, ते एव भूधरा ते एव देवा· देवालयाश्च, तान्येव शास्त्राणि पर युगानुरूपं विधान विधातु मेधामाविष्टा इय भारती एव प्रकरोति असम्भावितं परिवर्तनम् । पुरा यत् प्रशस्यतर गण्यतेस्म तदेव साम्प्रत हेय मन्यन्ते नवोन्मेषविभृष्टमतयो मानवा· ।

नाराणा नारीणां बालाना बालिकाना, नटाना नायकाना, गुरूणा शिष्याणाञ्च इय भारती एव मति मोटयति इति न वय ज्ञातुं प्रभवामः । अनिर्वचनीयम् अस्या वाग्विलासिन्या लास्यवैभवम् ।

अस्या प्रेरणयैव गुम्फितम् इद काव्य अस्याः एव चरणेषु पुष्पाञ्जलिरूपेण समर्पये ।

५७९-वी 'श्रीनिकेतनम्' —**श्रीरामः दवे**
८ 'सी', मार्ग सरदारपुरा, जोधपुर (राज.)
फोन . ४३२५७०



भारती-विलास

आगमशास्त्र मे वर्णो को मातृका नाम से अभिहित किया गया है। वर्णमालात्मक मातृका चार प्रकार की है, केवल, बिन्दुयुक्त, विसर्गयुक्त एवं उभयात्मक। लोक मे बिन्दु विसर्ग रहित केवल मातृका का उपयोग किया जाता है अन्य तीन भेदो का व्यवहार मन्त्रशास्त्र मे ही है। अकार से लेकर क्षकार प्रयन्त बिन्दुयुक्त मातृका को सर्वज्ञताकरी विद्या भी कहा गया है। तन्त्र के अनुसार "नविद्यामातृका परा" मातृका से परे कोई विद्या नही है। अकार से क्षकार तक पचास सश्लिष्टात्मक वर्णो को ही भारती नाम से पुकारा जाता है। पचास वर्ण ही उस भारती के अग और अलकरण माने गये है।

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोः पादयुक् कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दा कलितशशिकला मिन्दुकुन्दावदाताम्।
अक्षस्त्रक् कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्रीक्षणामब्जसंस्थाम्
अच्छा कल्पामतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि॥

वर्णमातृका को स्थूलमातृका कहते है वही वैखरी वाक् है। मध्यमा वाणी सूक्ष्ममातृका है। परा और पश्यन्ती को सूक्ष्मतर मातृका कहते है। यह मातृका विश्वनिर्मात्री, स्वतन्त्र अलुप्त-प्रभावयुक्त क्रिया शक्ति है। घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झकार और ध्वंकृति इन आठ प्रकार के शब्दो मे व्याप्त अ से क्ष तक पचास वर्ण भट्टारक रूप मन्त्रादिमय, समस्त शुद्ध, अशुद्ध ससारो की जननी परमेश्वरी

क्रियाशक्ति. अज्ञानभावा होने मे अक्रमा मातृका कही गई है। यही सम्पूर्ण वाच्य वाचकात्मक वाङ्मयाभास रूप होने के कारण सक्रमा मातृका बन जाती है।

आगम शास्त्र के अनुसार इस मातृका को अष्ट वर्गो मे विभक्त किया गया है जिनके द्वारा अणिमादि अष्ट सिद्धिया उत्पन्न होती है। मातृका के वर्णो मे तत्वो की सृष्टि होती है। मातृकाओ का सूक्ष्म केन्द्र कला माना गया है। प्रत्येक स्तर पर मातृका शक्तिकलात्मक बनकर परवर्ती सृष्टि का कारण बनती है।

वैखरी अवस्था मे वर्णो का इच्छाकृत प्रयत्न से उच्चारण किया जाता है अत मन. अन्तः और बाह्य सस्कारो से युक्त होने के कारण नाना प्रकार के विकल्पो से आक्रान्त होता है। उनका अन्तःकरण पर प्रभाव पडता है। इनको हटाकर शुद्ध विकल्प का सस्कार डालने के लिये मातृका उच्चारण की प्रक्रिया पूर्ण समर्थ है। इस उच्चारण के साथ मन प्राण और बिन्दु का सम्बन्ध है। पल्लवक्रम एव सपुटक्रमो के द्वारा साधक की अवधान मात्रा मे तीव्रता, एव स्पन्द शक्ति, पकड मे आती है। इस क्रम से मन्त्रसिद्धि भी शीघ्र होती है। प्राण की भूमि से चिदाकाश मे प्रवेश करते ही साधक को अपने सहज आन्तरिक अवधान की स्थिति मे रहने के कारण अपने भीतर ही मातृकाओ का उच्चारण पुनः-पुन· सहजरूप मे सुनाई देने लगता है। यह एक प्रकार की अन्तर्वैखरी अवस्था है। इससे जब और सूक्ष्म मध्यमा भूमि लब्ध होती है तब वर्ण अर्थात् ज्योतिरूप और ध्वन्यात्मक नाद निरन्तर बोध मे आता है। इससे नवनाद और ज्योति के सप्तवर्णो का साक्षात्कार होता है। पश्यन्ती के स्तर पर प्रत्येक वर्ण, शक्ति स्वरूप है और प्रत्येक वर्णात्मक देवता है। इन शक्तियो के सूक्ष्म मिलन और मिश्रण से मन्त्र बनता है। इस साधना मे मन्त्रदृष्टा को वर्णो की रश्मियो का बोध होता है। इस समष्टिस्वरूप मातृका शक्ति का अतिसूक्ष्म स्वरूप "विमल कला" कहलाता है। यह समस्त जगत् की प्रसवित्री शक्ति है। अतः मन्त्र साधना साधक, पूर्व मे प्रणव पुटित वर्ण मातृका का जप करता है।

व्यावहारिक जगत् मे भी विद्यारम्भ वर्णमातृका से ही प्रारम्भ होता है। प्राचीन समय मे विद्यारम्भ के समय "सिद्धो वर्णः समाम्नातः" इस कातन्त्र व्याकरण सूत्रो को पढ़ाया जाता था। ये वर्ण ही सारी सृष्टि के ज्ञान के कारण बनते है। इनके द्वारा ही पद वाक्य के माध्यम से सारे साहित्य का निर्माण होता है। साहित्य, सगीत, कला, विज्ञान आदि समस्त ज्ञान साहित्य का मूल वर्ण मातृका ही है। जिसे आगमो मे भारती कहा गया है।

यदक्षरमहासूत्र-प्रोतमेतज्जगत्रयम् ।
ब्रह्मण्डादिकटाहान्तं तां वन्दे सिद्धमातृकाम् ॥

यह वर्णमातृका प्रणव की मायाशक्ति या क्रियाशक्ति है । विश्व की विविध भाषाए उनका विविध प्रकार का वाग् विलास साहित्य आदि इसी अलौकिक शब्द ब्रह्म की ही अनन्त कलाए है । एक ही अकार उच्चारण मे एक-सा होने हुए भी विश्व की अनेक भाषाओ मे विविध लिपियो के माध्यम से भिन्न-भिन्न रूप धारण किये हुए है । उस शब्द ब्रह्म से ही वाक् सृष्टि का निर्माण होता है और लोकव्यवहार प्रारम्भ होता है । इस भौतिक सृष्टि मे हम जो विविध परिवर्तन परिवर्धन देखते है वह सब इस शब्द ब्रह्म का ही लीलाविलास है । शब्द की अनेक विधाए है । नाना प्रकार से उन्हे अभिव्यक्त किया जाता है । कभी वह कवि के मुख मे कविता रूप मे प्रकट होकर रसिकजनो के हृदय को आह्लादित करता है तो कभी प्रबुद्धजन की सधी हुई वाणी के माध्यम से परमतत्त्व का बोध कराता है । जिसे हम दर्शनशास्त्र के रूप मे देखते है । कभी वैज्ञानिक के माध्यम से नवीन आविष्कार के रूप मे परिवर्तित हो जाता है । कभी किसी विचारक के ओजस्वी भाषण के माध्यम से सामाजिक क्रान्ति ले आता है । यही शब्द ब्रह्म अपनी मायाशक्ति से नाना लिपियो का आवरण ओढकर भाषाओ के रूप मे प्रकट होता हुआ प्रान्त, प्रदेश और राष्ट्र की भाषाओ का अहकार धारण कर लेता है । यही इस शब्दब्रह्म की सृष्टि प्रक्रिया है ।

जब वह सहार प्रक्रिया करता है अथवा अन्तर्मुखी हो जाता है तब मानव की वाणी थम जाती है, विस्तार रुक जाता है । वह विचारो के प्रवाह से निकल कर अलौकिक मौन के साम्राज्य मे पहुँच जाता है । वह अपने वास्तविक स्वरूप नाद रूप मे सिमट जाता है । वह अपने चैतन्य स्वरूप ज्योतिर्मय अक्षरब्रह्म के रूप मे स्थिर हो जाता है । यही मोक्ष की स्थिति है ।

इस काव्य मे शब्दब्रह्म की माया मातृका रूप धारिणी भारती का ही लीलाविलास वर्णित किया गया है ।



अनुक्रमणिका

	श्लोक संख्या	पृष्ठ संख्या
मगलाचरणम्	६	१३
भारती लीलायितम्	१६	१५
वर्णवैभवम्	११	२१
प्रकृतिपोषणम्	१०	२४
कवितारूपमुपाश्रिता	२४	२८
कविता सङ्गजा मुद	१९	३७
मन्ये व्यूढं कलिहितकृते नव्यलीलायित ते	२५	४३
यान्त्रिकेऽपि युगे दिश्यते देवप्रभाव.	८	५१
प्रकृतिः विकृतिगता	१७	५४
क्रन्दतीह नन्दिनी	६	६०
लोकवाणी-विमोह	१८	६१
यन्त्रोदिता विकृति	१६	६७
विकृति जनितोविषादः	१७	७२
सदाशाभ्यर्थनम्	४	७८



भारती विलासः
मङ्गलाचरणम्

सूते सत्पुरुषान् युगेषु सततं यो धर्मरक्षाकृते
दुष्टानाञ्च वधाय यो जनयते वीरान् नृसिंहांस्तथा।
क्षीणां कालवशात् करोति च पुनर्यः प्राणितां भारतीम्
सोऽयं संस्कृतिगौरवाऽवनकृते देवोऽस्तु नः प्रेरकः ॥१॥

येऽभीकाः खलु तत्वबोधरहिताः पाशे निबद्धा जडाः,
नैवायान्ति कृपाकटाक्षसरणिं यस्या जनन्याः प्रियाम्।
सा भक्त्याऽमृतदायिनी भगवती नानास्वरूपाश्रया,
कुर्यान्मे हृदि संस्थिता नवनवैर्भावैर्मुदामञ्चनम्॥२॥

श्रृंगारादिरसालयाऽषृविभवा कामेश्वरी चिन्मयी,
पृथ्वीनीरहुताशनप्रभृतिभिस्तत्वैर्जगद्भाविनी।
ख्याता याऽकथगा हलक्षवशगा नित्या महाषोडशी,
भूयात् सा ललिता सदा मयि शिवा कारुण्यपूर्णेक्षणा॥३॥

वर्णानां जननी समस्तजगती ज्ञानप्रभादीपिका,
संविद्रूपवती प्रमोदकरणी दिव्याऽमृतस्यन्दिनी ।
मन्त्राणामुपजीविका नवविधप्रज्ञाप्रकाशप्रदा,
कुर्याद् भारतभूतले श्रुतिमतं ज्ञानोदयं भारती ॥४ ॥

राष्ट्रस्य गौरवकथा परिपालकानाम्,
विश्वस्य मंगलमनोरथ-वाहकानाम् ।
स्वाधीनताऽमृतघटस्य च रक्षकाणाम्
पुण्यात्मनां हृदि सदा स्मृतयो वसन्तु ॥५ ॥

ये संस्कृतेर्विमलरूपरसानभिज्ञाः
भ्रान्तिं छलेन गमिता इह भारतीयाः ।
ते राष्ट्रवैभवमतिं शिवदां लभन्ताम्
याचामहे प्रभुमिदं मनसा विनम्राः ॥६ ॥



भारतीविलासः

भारती लीलायितम्—

शब्द ब्रह्म रसायनोदयकरीं सारस्वताराधिताम्
वर्णाच्छादितविग्रहां नवनवच्छन्दोऽम्बराडम्बराम्
शब्दार्थध्वनिरीति-संभृत-रसालंकार-सम्मण्डिताम्
वाग् व्यापारंपथे भजे विदधतीं लीलायितं भारतीम् ॥१ ॥

शब्द ब्रह्म को जीवन शक्ति प्रदान करने वाली, विद्वज्जनो की आराध्य देवता, वर्णविग्रहवती, भगवती भारती को प्रणाम करता हूँ। जो विविध छन्द वस्त्रो को धारण कर, अपने दिव्य शरीर को शब्द अर्थ, ध्वनि रीतियुक्त रस अलंकारों से मण्डित करती हुई, विश्व के वाग् व्यापार मे नित्य नई-नई लीलाए प्रकट करती रहती है ॥१ ॥

सृष्टिस्तद्गुणगुम्फिता—

माया भारति ! भाति कापि भुवनेऽवाच्या तवैषा यया,
सर्वं वर्णविभावनाऽञ्चितमिदं विश्वं पुरो भासते ।
नृत्यन्तीव च लक्ष्यतेऽत्र विशदं काले विलीनापि या
सृष्टिस्त्वद्गुणगुम्फिता ह्यविरतं सद्रोचिषा भासुरा ॥२ ॥

हे भगवति भारति ! इस भूमण्डल पर फैली आपकी माया अवर्णनीय है । जिस माया के कारण वर्णो के माध्यम से प्रकटित यह विश्व प्रत्यक्ष-सा प्रतीत होता है । जो सृष्टि कालचक्र के प्रभाव से विलीन हो गई है वह भी तुम्हारे गुणसूत्रो से गुम्फित होने पर अपनी यथार्थ सुन्दरता लिये ऑखो के आगे नृत्य करती-सी लक्षित होती है ॥२ ॥

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नम्—

त्वत्तो रूपावयव-विधुर-ब्रह्मणे रूपराशिः,
अव्यक्तोऽयं नयनसुभगां व्यक्तिमासाद्य मत्तः।
वाच्यो भूत्वा लसति भुवने त्वत्प्रसादादवाच्यः,
मायाऽप्येषा नटति नटिनीवाङ्गणे तस्य मत्ता ॥३ ॥

हे भारति! रूप और अगहीन इस ब्रह्म को तुमने ही रूप का भण्डार दिया है। यह अव्यक्त भी नयनाकर्षक रूप पाकर मतवाला बन जाता है। जो अवाच्य है वह भी तुम्हारी कृपा से ही भुवनमण्डल मे वाच्य बना भ्रमण कर रहा है। उसकी माया भी तुम्हारे अनुग्रह से नटिनी की तरह नाच रही है ॥३ ॥

अच्युतोऽपि लीलाच्युतः—

चित्रं सोऽच्युत ईश्वरोऽपि विहितो लीलाच्युतो माधवः,
गोपीनां नवनीतचोरचतुरश्चेतोहरो गोचरः।
निर्मोही विरहानले व्रजवधूर्हुत्वा गतो नाऽगतः,
चक्रे यः समराङ्गणेऽपि चकितं गीतामृतस्यन्दनम् ॥४ ॥

हे भारति! बड़े आश्चर्य की बात है कि तुमने उस अच्युत ब्रह्म को लीलाच्युत माधव बना दिया। जो व्रज की गोपियो का नवनीत चुराने के साथ-साथ चित्त भी चुराता रहा। अन्त मे इतना निर्मोही निकला कि उन बेचारी भोली-भाली व्रजाङ्गनाओ को विरहाग्नि मे झोक कर चला गया और वापस आया ही नहीं। इससे भी बडा आश्चर्य है कि ऐसी मोह लीला करने वाले ने युद्ध भूमि मे मोहभग करने वाली गीता की अमृतधारा भी बहा दी ॥४ ॥

शास्त्र-वारिधि-विधायिनी—

पञ्चाशद्भिस्तनुजलकणैर्निर्मितः शब्दवार्धिः,
तस्माज्जाता जगति वरदा वारिदाः शास्त्ररूपाः।
वर्षन्त्येते भुवि हितकरं जीवनं प्राणभाजाम्
तेनैवैषा धरणिरमृतज्ञानवाजेनपूर्णा ॥५ ॥

हे भारति । आपने अपनी इन पचास वर्ण वारिकणिकाओं से अथाह शब्दसागर बना दिया है जिसके जल से इस ससार मे विविध शास्त्र वारिद उत्पन्न होते रहते है और अपना मधुर जल बरसाते हुए अपनी जलधारा से इस धरा को ज्ञान के अन्न से हरी-भरी करते रहते है ॥५ ॥

शिवसूत्रैर्गुम्फितं शब्दशास्त्रम्—

तव विमलविभूतेर्वैभवं विश्ववन्द्यम्,
भणति हरकृपाप्तं पाणिनेश्शब्दशास्त्रम् ।
यदुदितशिवसूत्रैर्गुम्फि i देववाण्याः
लसति भुवनमध्ये वाङ्मयं वै विशालम् ॥६ ॥

हे भारति ! तुम्हारे निर्मल ऐश्वर्य का वैभव शिवकृपालब्ध यह विश्ववन्द्य पाणिनि का शब्द शास्त्र भी प्रकट कर रहा है । जिसके सूत्रों से गुम्फित इस देववाणी का विशाल वाड्मय आज सारे ससार में विख्यात है ॥६ ॥

पातञ्जलं महाभाष्यम्—

किमिव तव गुणानां कीर्तये कीर्तिगानम्
भणति फणिधरस्तत् स्वात्मवक्त्रैः सहस्त्रैः ।
धृतगुरुतनुरूपः पाणिनेः सूत्रभाष्यम्,
निजविरचितमेषोऽपाठयन्नात्मशिष्यान् ॥७ ॥

हे भारति ! तुम्हारे गुणो का यशोगान मै किस वाणी से करूं । इसे तो सहस्त्रफण स्वय अपने सहस्त्रवदनो से कर रहा है । जिसने कुलपति पतञ्जलि का रूप धारण कर पाणिनि के सूत्रो पर रचा गया भाष्य अपने असख्य शिष्यो को पढाया ॥७ ॥

वेदप्रभादीपिनी—

वेदानां जननी स्वरैरभिमतैर्मन्त्रप्रभादीपिनी,
देवानाञ्च हुताशनाहुतिपरैः स्वाहास्वरैस्तोषिणी ।
पितॄणां परितृप्तये धृतसुधा जाता स्वधारूपिणी,
श्रौतस्मार्तविधानपुण्यनिरता धर्मं परित्रायसे ॥८ ॥

हे भारति ! तुम ही वेदों की जननी हो। तुमने ही अपेक्षित स्वरों द्वारा वेदमन्त्रों की प्रभा को प्रदीप्त किया है। जिसके द्वारा स्वाहा पूर्वक आहुति देकर देवों को प्रसन्न किया जाता है, तथा स्वधा द्वारा पितृओं की तृप्ति होती है एव श्रोतस्मार्त विधि में विभिन्न धर्मानुष्ठानों के माध्यम से धर्म का रक्षण किया जाता है ॥८ ॥

नादब्रह्मविभाविनी–

नादब्रह्मशिवाश्रया समुदिता मूलात्पराख्या सती
पश्यन्ती हृदये स्थिता च धिषणायोगे मता मध्यमा ।
वक्त्रे व्याकृतवैखरी च विदिता वागात्मिका मातृका,
देहे न्यासकलाविलास-कलितैर्दैवत्व-सम्पादिनी ॥९ ॥

हे भारति ! तुम ही नाद ब्रह्म का आश्रय लेकर मूलाधार से परावाक् के रूप मे प्रकट होती हो, हृदय मे पश्यन्ती रूप से, मध्यमा बनकर बुद्धि मे और वेखरी बन कर मुख मे वर्णमातृका का रूप धारण करती, मातृका न्यासो द्वारा देह मे देवत्व समाहित करती हो ॥९ ॥

योगसूत्रावृताङ्गी–

हंसारूढां विमलवसनां योगसूत्रावृताङ्गीम्,
मूलाधाराद्यमलकमलोद्भासने भास्कराभाम् ।
संविन्मूर्तिं तडिदिव चलां-योगिनां मोदकर्त्रीम्,
चेतोवृत्तेर्नियमनपरां भावये दिव्यरूपाम् ॥१० ॥

हे भारति ! तुम हस पर आरूढ होकर, अर्थात् सोह के रूप मे हृदय मे भासमान निर्मलवसना, योगसूत्र धारण किये हुए, मूलाधार मे स्थित कमल मे सूर्य की आभा बन जाती हो। सविद्रूपा देहस्थित षट्चक्रो मे विद्युत् की तरह चलायमान योगियो को प्रमोद प्रदान करती हुई चित्तवृत्ति का नियमन करने वाली दिव्यमूर्ति बन जाती हो ॥१० ॥

संगीतोदयकारिणी—

नादब्रह्मविभावने च निरता ख्याता जगन्मोहिनी,
सङ्गीतोदयकारिणी नवनवैः रागैः रसोन्मेषिणी ।
मन्द्रैर्मध्यमतारसप्तकयुतैर्नानास्वरैः रञ्जिनी,
स्थाय्यारोह्यवरोहिवर्णविभवैः संवर्धसे भारति ! ॥११ ॥

सगीत शास्त्र मे नाद ब्रह्म को लुभाने मे लगी, नये-नये राग-रागिनियो से ससार का मनमुग्ध करती हुई, मन्द्र मध्यम और तार स्वरो से श्रोताओ के मनोरञ्जन मे परायण, अपने स्थायी, आरोही अवरोही स्वर वैभव को प्रकट करती हो ॥११ ॥

लिपिलावण्य लासिनी—

विश्वव्यापृतविग्रहां नवनवैर्वर्णाम्बरैः संवृत्ताम्
नानारूपवतीं सुवर्णरसिकां सव्यापसव्यक्रमाम्
आर्यान् दक्षिणपाणिना च यवनान् वामेन संनोदिनीम्
ऊर्ध्वाधोऽपि विहारिणीं लिपिवृतां नौम्यर्णसिन्धुश्रियम् ॥१२ ॥

हे भारति ! तुम इस ससार के कोने-कोने मे नये-नये वर्णवसन पहनकर, नानाविध रूप प्रकट करती हो । तुम्हारा वर्णात्मक रूप कभी वामगति करता है तो कभी दक्षिण की ओर चलता है । प्रायः आर्यो को दक्षिण मार्ग से प्रेरित करती हुई तथा यवनो को वाम की ओर गति प्रदान करती हुई लिपियो के माध्यम से ससार को ज्ञान प्रदान करती हो ॥१२ ॥

धृत्वा वै विविधानि चित्रवयने ! लिप्यम्बराणि क्वचित्
विख्याता सुरनागरी तमिलगा बंगादिप्रान्ताश्रया ।
गौराङ्गी यवनी खरोष्ठवदना चित्राम्बरैरावृता
भाषाभेदविमोहिता-खिलजगन्मायावती भाससे ॥१३ ॥

हे भारति ! तुम इस भूतल पर विचित्र प्रकार से बुने हुए लिपिवस्त्र पहनकर, कही देवनागरी, कही तमिलजा कही बगाली भाषा बनकर, कही अंग्रेजी, अरबी, खरोष्ठी आदि भाषा लिपियो के वसन पहने, भाषा भेद के द्वारा ससार मे अपनी माया फैला रही हो ॥१३ ॥

योगिनामपि समाराध्या—

मुनीनां सिद्धानां तपसि निरतानामपि वने,
स्थितानां संविष्टा हृदि कथमये ! हंस विधिना।
विकल्पं संकल्पं सकलमपि हित्वा च रहसि,
भजन्ते येनैते परममुदमात्मन्यभिरता: ॥१४ ॥

हे भारति ! यह वडा आश्चर्य है कि वनो मे रहने वाले मिद्ध तपस्वी मुनियो एव यतिजनो के हृदय में तुम हसविधि से नाद बन कर कैसे प्रवेश कर गई, जिसके कारण वे सारे सकल्प विकल्प छोड़कर एकान्त मे मस्त होकर आत्मानन्द मे रमण करते रहते हैं ॥१४ ॥

कुलिशकटुताप्येतिमृदुताम्—

प्रसक्तानां भोगे जनयति च योगेऽप्यभिरुचिम्,
अनास्थानामीशे कलुषनिरतानामपि नृणाम्।
द्रुतं-भक्त्युद्रेकं कलयसि कलङ्केऽपि सुषमाम्,
द्रवत्यन्तो ग्रावा कुलिशकलनाऽप्येति मृदुताम्॥१५ ॥

हे भारति ! तेरी कृपा से ही भोग लिप्त लोग भी योग मे रुचिवान् बनते है। भगवान मे विश्वास न करने वाले पापी के हृदय में भी भक्तिभाव जागृत हो जाता है। कलंक भी सुषमा बन जाता है। कठोर पाषाण भी दया से पिघल जाता है और कुलिश की कठोरता भी कोमल बन जाती है ॥१५ ॥

वैखरी खेचराणाम्—

मौनं मौनं वियतिचरतां वैखरी खेचराणाम्,
शीतोष्णानां शशिरविरुचां रोचना-लेखनी त्वम्।
शून्ये चित्राङ्कनकृतिरता तूलिका रञ्जयित्री
पञ्चाङ्गानां प्रकृतिसुरभेः मण्डनं संविधत्से॥१६ ॥

आकाश मे मौनभाव से विचरण करने वाले ग्रहनक्षत्रो को भी तुम ही वैखरी वाणी हो। तुम ही उष्णता शीतलता को फैलाने वाले सूर्य चन्द्र का वर्णन करने वाली

सुन्दर लेखनी हो। तुम ही इस शून्य आकाश मे अपनी कूर्चिका से रग-विरगे चित्र बनाती हो, तुम हीं इस प्रकृति के मास पक्ष दिन आदि पचाग के पाचो अगो को मण्डित करती हो ॥१६ ॥

वर्णवैभवम्—

वर्णः स्फोट-विजृम्मणोद्भव सुधा-बिन्दूद्भवो ह्यर्णवः
नानाशास्त्र विचाररत्ननिवहाऽधारान्तरः शेवधिः।
आत्मानन्दतरङ्गभङ्गिसुभगो गम्भीरनादोदयः
यस्याऽभ्मः कणिकानिपातजनितैः शस्यैर्धरा शाद्वला ॥१७ ॥

यह वर्ण तो शव्द स्फोट से निकले अमृत विन्दुओ से वना साहित्य सागर हैं। जिसके अन्दर अनेक शास्त्ररत्नो के भण्डार का आधार छिपा हुआ है जिसकी आत्मानन्द तरङ्गो से गभीर नाद का उदय होता हैं तथा जल कणिकाओ से उत्पन्न शस्य से धरा हरी-भरी होती है ॥१७ ॥

वर्णात्मिकायास्तव देवि! रूपम्,
जानाति लोकोव्यवहारसिद्ध्यै।
परं रहस्यं निहितं तु तस्मिन्
वेत्त्येष नैतद् मुनिभिर्निगूढम् ॥१८ ॥

हे भारति! तुम्हारे वर्णात्मक रूप को सामान्यजन केवल अपने लोक व्यवहार का साधन ही मानता है। वह मुनिजनोद्वारा इसमे निहित रहस्य को नही जानता ॥१८ ॥

कलाः समस्तास्तव वर्णवृन्दे,
स्वरात्मिके व्यञ्जनव्यक्तरूपे।
अव्यक्तभावा अपि मन्त्रबन्धे
कुर्वन्ति लोकस्य हितं तु सिद्धाः ॥१९ ॥

तुम्हारे इस स्वर व्यञ्जनात्मक वर्ण विग्रह मे अनेक कलाए अव्यक्त रूप से रहती है जिन्हे सिद्ध पुरुष मन्त्रो के माध्यम से लोक-कल्याण के लिये प्रकट करते है ॥१९ ॥

षट्चक्रनिष्ठाः स्वरव्यञ्जनानाम्
कलात्मिका या गदिता हि शक्तयः।
तासां रहस्यं खलु योगिवेद्यम्,
जानाति लोको नहि भौतिकाद्यः ॥२० ॥

स्वर और व्यञ्जनो की कलात्मिक शक्तिया देहस्थ षट्चक्रो मे भी निहित है। इस रहस्य को योगी जन ही जानते है। भौतिकवादी इस रहस्य को नही जान सकते ॥२० ॥

वर्ण्येत वाचा तु कयाऽद्य भारति!
त्वद्वैभवं वर्णगतं समृद्धम्।
रश्मिक्रमज्ञानयुता हि केवलम्
जानन्ति तन्मन्त्रविदो विशिष्टाः ॥२१ ॥

हे भारति! तुम्हारे इस समृद्ध वर्ण समूह के वैभव का वर्णन कैसे किया जाय। इस रहस्य को तो रश्मिक्रमवेत्ता विशिष्ट मन्त्रज्ञ उपासक ही जान सकते है ॥२१ ॥

अनन्तसंख्या विदिताश्च रश्मयः
त्वद्वर्णगा आगमशास्त्रकल्पे।
गुरुप्रसादात्सकलं रहस्यं
विज्ञायते सिद्धिरतैर्हि शिष्यैः ॥२२ ॥

तुम्हारे इस वर्णकोष की असंख्य रश्मियो का आगम शास्त्र मे वर्णन किया गया है। इसकी विचित्रता को एव रहस्य को गुरुकृपा से निर्दिष्ट साधना मे लगे लोग ही जान सकते है ॥२२ ॥

देवाः समस्ताः खलु वर्णवश्याः
भूताश्च सर्वेऽर्णगताः लसन्ति।
तत्वाश्च सर्वेऽपि हि मातृकाणाम्
गर्भे निलीनाः कलयन्ति कामान् ॥२३ ॥

समस्त देव एवं भूत तुम्हारे इन वर्णों के ही वशीभूत हैं। तथा इन वर्णमातृकाओं के गर्भ में छिपे हुए समस्त तत्त्व भी मनुष्यों की विविध कामनाओं की पूर्ति करते हैं ॥२३॥

रश्मिक्रमज्ञानविदो हि सिद्धाः
शिवस्वरूपाः प्रभवन्ति नूनम्।
वेत्तुं विशिष्टं निगमागमोक्तम्,
मन्त्रेषु निष्ठं विपुलं हि वीर्यम्॥२४॥

वस्तुतः इस वर्ण मातृका के रश्मि क्रम के ज्ञाता तो शिव स्वरूप सिद्ध ही होते हैं। वे ही आगम और निगम के मन्त्रों की विशिष्ट शक्तियों को जानने में समर्थ होते हैं ॥२४॥

वर्णाऽर्णवे रश्मिकला विशाले
रत्नान्यमूल्यानि हि निह्नुतानि।
कलाविदो योगपथाधिरूढा,
गर्भे प्रवेष्टुं प्रथिताः समर्थाः॥२५॥

तुम्हारे इस विस्तृत वर्णार्णव में अनेक अमूल्य रत्न छिपे हुए हैं। इस समुद्र के गर्भ में वे ही प्रवेश कर सकते हैं जो इन वर्णों की कलाओं के ज्ञाता हैं तथा जिन्होंने योगमार्ग का अवलम्बन किया है ॥२५॥

वर्णन्यासफलम्—

षट्चक्रभेदोदितदिव्यशक्तिः
विद्युत्प्रभा मानवदेहनिष्ठा।
न्यासप्रसारैः खणु वर्णबद्धैः
मन्त्रैरियं कुण्डलिनी प्रबोध्यते॥२६॥

तुम्हारे वर्ण बद्ध मन्त्र न्यासों के द्वारा ही पिण्ड स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जागृत किया जाता है। जिनकी दिव्य शक्ति षट्चक्रों के भेदन से ही प्रकट होती है। जो विद्युत् की भांति शरीर में चमकने लगती है ॥२६॥

विन्दन्ति सिद्धा खलु मन्त्रशक्त्या
सामर्थ्यमर्घ्यं वरशापरूपम्।
वश्याश्च देवासुरयक्षगुह्याः
भवन्ति भूता ललना मनुष्याः ॥२७॥

हे भारति! सिद्ध पुरुष मन्त्र शक्ति के द्वारा ही अद्भुत शापानुग्रह सामर्थ्य प्राप्त करते हैं। मन्त्रों के द्वारा देव दानव, यक्ष किन्नर कि वा स्त्री-पुरुष सभी उनके वशीभूत हो जाते हैं ॥२७॥

प्रकृति-पोषणम्—

पृथ्वीवसुमती कृता—

दत्वाऽलंकरणं त्वयैव विहिता शून्या जड़ा पंकिला,
रूक्षाकण्टकिता शिलाहिमहता वात्याटवीवेष्टिता।
लोकानामुपकारिणी हि प्रकृतिः लावण्यसम्भाविता,
पृथ्वी पांसुमती कृता वसुमती विश्वम्भरा सुन्दरी ॥२८॥

हे भारति! तू ने ही इस शून्य, जड, कीचड भरी, कटिली, पाषण और हिम से व्याहत एवं झझा और जगलो से घिरी, भयावनी प्रकृति को लावण्य के अलकारो से अलकृत किया है तथा इसे लोकोपकारिणी बनाकर सुन्दरता से सजाया है। तथा धूल भरी धरा को वसुमती विश्वम्भरा सुन्दरी बनाया है ॥२८॥

ग्रहाश्च गुरुतां नीताः—

चित्रं भास्करभौमभानुतनयाः क्रूरा हि खेटाः कृताः,
दिव्याः शुक्रबृहस्पतीन्दुतनयाः सौम्याश्च चन्द्रान्विताः।
नक्षत्राद्यमला नभोधृतपदा नीतास्त्वया भारति!
भूमौ कुण्डलिकीलिता हि विवशा ज्योतिर्विदां बन्धनम् ॥२९॥

आश्चर्य है कि तुमने आकाश मे विचरण करने वाले, सूर्य, मगल, शनि को क्रूर ग्रह घोषित कर दिया । शुक्र बृहस्पति, बुध और चन्द्र को सौम्य बना दिया और इन्हे आकाश मे विचरण करने वाले नक्षत्रो के साथ जोडकर जातक की जन्म-कुण्डली मे कीलित कर ज्योतिषियो का बन्दी बना दिया ॥२९ ॥

शून्येऽपि विभुता हिता—

आकाशमेत्य रमते विमलाऽत्र गङ्गा,
ताराग्रहाश्च यदलंकरणे नियुक्ताः ।
यन्नामपूर्वसुभगा प्रथिता च वाणी
शून्येऽप्यमूल्य-विभुता निहिता त्वयास्मिन् ॥३० ॥

हे भारति ! तुम्हारी कृपा से ही यह शून्य आकाश निर्मल गगा केसाथ विहार कर रहा है तथा तारे और ग्रह इस के श्रृगार साधन बने हुए है । वाणी को भी इसके साथ जोड कर इसे आकाश वाणी नाम से युग मे प्रसिद्ध कर दिया है । तुम्हारे अनुग्रह से ही यह आकाश वैभवशाली बना हुआ है ॥३० ॥

पिण्डेब्रह्माण्डदर्शनम्—

ब्रह्माण्डोऽयं लघुनि निहितः पिण्डकुण्डे त्वयैव,
स्वात्मन्येषोऽप्रकटितगती राजते चण्डसूर्यः ।
चन्द्रो राकारमण इह नो मानसीवृत्तिनिष्ठः
दिव्याश्चैते गगनगतिकाः कल्पिता देहबद्धाः ॥३१ ॥

हे भारति ! तुमने इस विशाल ब्रह्माण्ड को मनुष्य के लघु पिण्ड मे समाहित कर रखा है । यह प्रचण्ड सूर्य मनुष्य शरीर मे आत्मा बना दिया गया है । चन्द्रमा को मन का स्वामित्व प्रदान कर रखा है । गगन विहारी सभी ग्रह अदृश्य रूप से इस मनुष्य शरीर के बन्दी बने हुए है ॥३१ ॥

खेचराः सुरतां नीताः —

सूर्यः—

क्रूरोऽपि चित्रं लभतेऽर्घ्यमेषः
चण्डोऽपि चाक्षुष्यकरो निगद्यते।
त्वयैव सौभाग्यवतीशुभंकरः
सम्पादितोऽयं जगति प्रभासते ॥३२ ॥

हे भारति ! तुम्हारी कृपा से यह क्रूर ग्रह सूर्य भी पूज्य पदवी प्राप्त कर रहा है। प्रचण्ड किरणों वाला भी चक्षुरोग निवारक मानाजाता है। सौभाग्यवती स्त्रियो के लिये भी मंगलकारक देव बना हुआ है ॥३२ ॥

देवोऽपि खद्योतकखेट एष
करोति भूमावपि लोकवृत्तिम्।
कुन्तीं कुमारीं विदधेऽम्बिकां यः
कर्णस्य चित्रं तव माययैव ॥३३ ॥

आश्चर्य है कि आकाश मे विचरण करने वाला यह सूर्य देवता पृथ्वी पर जाकर मनुष्य जैसा व्यवहार करता है। इस देवता ने तुम्हारी माया के वशीभूत होकर पृथ्वी पर उतरकर कुमारी कुन्ती को कर्णकी मा बना दिया ॥३३ ॥

दिवाकरः पावक गोलकोऽयम्
देवत्वभावं भजतेऽद्य लोके।
तवैव योगात् खलु भारति! श्रियम्
प्रभाकरोऽयं तनुते धरायाम् ॥३४ ॥

हे भारति ! यह पावक पिण्ड सूर्य तेरी कृपा से ही देवभाव से पूजा जाता है। तुम्हारे सहयोग से ही इसे धरा पर प्रभाकर श्रीपद प्राप्त हुआ है ॥३४ ॥

शशाङ्कोऽपि समेधितः—

निशाकरश्चापि शशांगलांछनः
वराङ्गनावक्त्र-विभावनोत्सुकः।
देवोऽपि शापं भजते तपस्वी,
क्षयाधिसंपीडितशुभ्रकायः ॥३५॥

हे भारति ! तुम्हारी माया बड़ी विचित्र है। तुमने निशा मे प्रकाश प्रदान करने वाले चन्द्र को एक ओर शश का लाछन लगाया तो दूसरी ओर सुन्दरी के मुख का अलकरण प्रदान किया और तो और इसे देवता भी वनाया और शापित भी कर दिया जिससे वह क्षय रोगग्रस्त वना हुआ है ॥३५॥

वियोगिनां प्राणहरोऽपि पूज्यते
शिवस्यमूर्धानमुपाश्रितोऽयम्।
शृङ्गारसारे भजतेऽनुभावम्
कन्दर्पसेनापदवीं प्रपन्नः ॥३६॥

यही नही एक ओर इसे वियोगियो का प्राणघातक बनाया तो दूसरी ओर इसे शिव के सिर पर चढा दिया। तथा श्रृगार रस का प्रधान पुरुष वनाकर कामदेव की सेना का सेनापति वना दिया ॥३६॥

ज्योतिर्विदां जन्मजुषां कुलेऽपि,
मनोदशांवै दिशतीश्वरोऽयम्।
क्षाराब्धिजातोऽपि गतः प्रतिष्ठाम्
सुधाकरस्येति तव प्रसादः ॥३७॥

हे भारति ! तुम्हारे अनुग्रह से ही यह ज्योतिषियो के घर मे स्वामी बनकर सबकी मनोवृत्तियो का सचालन कर रहा है। आश्चर्य है कि यह खारे समुद्र से जन्म पाकर भी सुधाकर कहलाता है ॥३७॥

कवितारूपमुपाश्रिता—

धृत्वा लोके मधुरकविताकामिनीरम्यरूपम्,
स्निग्धैर्भावैर्जनयसि नृणां मोदपूरं हृदब्धौ।
विज्ञैर्वन्द्या बहुगुणयुता भावपूर्णा सुवर्णा
त्वामाश्लिष्य प्रभवति नरः को नु मुग्धो रसज्ञः ॥३८ ॥

हे भारति ! इस संसार मे तुम मधुर कविता कामिनी का रूप धारण कर अपने स्नेह भरे भावो से लोगो के हृदय सागर मे आनन्द की हिलोरे पैदा करती हो। वस्तुत विद्वज्जनो की गुणवती विविध भावो से भरी, तुमसी सुन्दरी का सगम पाकर कौन ऐसा रसज्ञ होगा जो तुम पर मुग्ध न हो ॥३८ ॥

वृत्तिव्यापार धात्री—

सङ्केते ते निहितममृतं व्यंग्यवैशिष्ट्यपूर्णम्
स्निग्धा कण्ठध्वनिरपि सुधां वर्जयन्तीव भाति।
मेधामन्दे सततमभिधा लक्षणा लक्ष्यलुब्धे
वाचां गर्भोन्नियननिपुणा व्यञ्जनासूतिधात्री ॥३९ ॥

इस कविता कामिनी के व्यग्य व्यापार मे भी अमृत भर जाता है। जब तुम संगीत बनकर कठ से निकलती हो तो सुधा भी फीकी पड जाती है। मन्द बुद्धि के आगे अभिधा बनकर, तो लक्ष्य लोभी को लक्षणा बनकर, तथा जो रसज्ञ, वाणी के अन्त-स्थित मर्म को जानना चाहता है उसके लिये व्यञ्जना का रूप धारण कर आ जाती हो ॥३९ ॥

शृङ्गारहारावली—

यदा श्रृङ्गाराढ्या कुसुमशरलावण्यललिता,
सुधाकुम्भस्नाता भवसि रतिभावोदयकरी।
यतीनां चित्ताब्धावपि ललति सौन्दर्य-लहरी,
कवीन्द्राणां कुण्ठां भजति महताञ्चापि कठिनी ॥४० ॥

जब तुम अपने कामदेव से सुन्दर शरीर को श्रृंगार से सजाती हो तो तुम्हारे

अमृतकुम्भ से अभिषिक्त अगो को देखकर रति भाव जागृत हो जाता है । क्या कहे तुम्हे देखकर यतिजनो के हृदय मे भी सौन्दर्य की लहरे उठने लगती है तथा वड़े-वडे कवियो की लेखनी भी उसे देखकर थम जाती हैं ॥४० ॥

शब्दब्रह्मविमोहिनी—

शब्द ब्रह्मविमोहिनी त्वमसि हे ! लावण्यलीलावती
धृत्वा त्वं कविताललामवनितारूपं रसोन्मेषजम् ।
नानालंकृतिमण्डिता नवनवान् भावान् श्रियोद् ाविनी,
चित्तं मादयसे रसाप्लुतधियां रूपैरनेकैर्युता ॥४१ ॥

तुम अपनी लावण्य लीलाओ से शव्द व्रह्म को भी मोहित कर देती हो । तुम रसोन्मेषजनक सुन्दर कविता का रूप धारण कर, नाना प्रकार के अलकारो से सजकर अपनी शोभा से नानाविध भाव जगृत करती हुई रमिको का मन मोह लेती हो ॥४१ ॥

प्रणयोपहारसुभगा—

नित्यं नूतननायिकाप्रणयिनी भूत्वा मधुस्यन्दिनी
जाता क्वापि शकुन्तला हरसि भो दुष्यन्तचेतः श्रिया ।
लैला नूरजहां ललामयवनी सम्मोहिनी वा क्वचित्
स्निग्धाङ्गी प्रणयोपहारसुभगा काव्यांकिता भाससे ॥४२ ॥

कभी प्रणयिनी नायिका बनकर माधुर्य बरसाती हुई शकुन्तला बनकर दुष्यन्त का मन लुभाती हो तो कभी लैला और नूरजहां बनकर प्रणयीजनो का मन चुराती हुई, कोमलांगी, प्रणयोपहार लिये, कविता के रूप मे अपनी चमक दिखाती हो ॥४२ ॥

विप्रलम्भे वियोगिनी—

यदा रत्यारूढा प्रणयविवशाभीषृविरहे,
स्पृहाचिन्तोन्मादैर्जनयसि च कारुण्यकलनाम् ।
भवन्त्युच्छ्वास्ते विरहजनिता मेदुरघनाः,
प्रियस्मृत्यालम्बा नयनजलधारोदयकराः ॥४३ ॥

जब विप्रलम्भ शृंगार की अवस्था मे मनुष्य विषयक रति भाव पर आरूढ होती हो तो अपनी प्रियजन के वियोग मे विरह विवशा बन जाती हो । तुम्हारे हृदय मे उत्पन्न स्पृहा चिन्ता एव उन्माद और करुणा का दृश्य उपस्थित हो जाता है । तुम्हारे हृदय मे विरहवेदना के कारण उठे उनछ्वास घने मेघ बन जाते है, जो प्रियजन की स्मृति मे आँखो मे जलधारा बनकर बरसने लगते है ॥४३ ॥

यदा भक्त्युद्रेकः—

यदा भक्त्युद्रेको हरिमधुकथाकीर्तन-भवः
उदेति स्निग्धान्ते प्रभुचरण-संसिक्तमनसः ।
विरक्तेऽप्यासक्तिं व्रजयुवतिरागे जनयते
निमग्ने राधाया रमणरसलीलाम्बुधितले ॥४४ ॥

जब शृंगार रस का रति भाव भगवद् विषयक बन जाता है तब प्रभु चरणो मे अनुरक्ति रखने वाले भक्तजन के प्रेम भरे हृदय मे, हरिकथा एव कीर्तन के कारण भक्ति रस प्रबल हो जाता है तो विरक्त पुरुष भी व्रजाङ्गना के प्रेम भरे प्रसगो मे आसक्त होकर राधारमण के लीलासागर मे डूब जाता है ॥४४ ॥

कौतुकैर्हास्यजननी—

क्वचिद् वाग्भिर्वेशैर्विविधकलितैः कौतुककरी,
हसन्ती व्यालोला प्रमथ-वशगा शुक्लवसना ।
स्मितैः स्पन्दैरक्ष्णोर्विकिरसि मुदं प्रेक्षकगणे
विनोदव्यापारैर्ललितनटितैर्नाट्य-भुवने ॥४५ ॥

जब रंगमच पर नाट्यकला मे हास्य रस प्रकट करना चाहती हो तब प्रमथ देवता के आवेश में श्वेत वस्त्र पहनकर, कभी वाणी से तो कभी विविध प्रकार की वेषभूषा से अपने कौतुक दिखाती हुई कभी हसी से, कभी अपने अंगो के हाव-भाव से कभी ऑखो के इशारे से दर्शको का मनोरञ्जन करती हुई कई रग दिखाती हो ॥४५ ॥

कारुण्यकलितैः करुणरसोद्भाविनी—

यमोपास्या शोकाश्रयधृतकपोताभवसना
ह्यनिष्टाप्तौ दीना प्रियजनविनाशेऽतिविकला।
वियोगे वामानां किमथ पुरुषाणाञ्च कृपणा,
जनानां कारुण्यं जनयसि च शोकैर्हृदि भृशम् ॥४६ ॥

जब करुण रस प्रकट करना चाहती हो तो कपोतवर्ण के वस्त्र पहनकर यम की उपासना करने लगती हो। किसी अनिष्ट घटना घटित हो जाने पर कि वा प्रियजन की मृत्यु हो जाने पर अति दीन बन जाती हो। कि वा किसी स्त्री अथवा पुरुष के वियोग मे व्यथित होकर शोक प्रकट करती हो तो दर्शको के हृदय मे कारुण्य प्रकट हो जाता है ॥४६ ॥

भयदा रौद्ररसालम्बा—

क्वचिद् रुद्राराध्या भवसि रणचण्डी भयकरी
रणे शस्त्राघातैः रिपुजन-विनाशे च निरता।
सरोषं भ्रूभङ्गै द्विषदुरसि पादाहतिपरा
प्रकम्पं देवानामपि मनसि भीमा कलयसि ॥४७ ॥

जब रौद्र रस प्रकट करना चाहती हो तो रुद्रदेवता की आराधना मे भयकर रण चण्डी बन जाती हो। युद्ध मे शस्त्रो द्वारा रिपुजनो का संहार करती हुई, क्रोध मे भ्रकुटि चढाकर शत्रुओ की छाती पर चढ़ जाती हो। तुम्हारा यह रौद्र रूप देखकर देवता भी भय से कापने लगते है ॥४७ ॥

वीरे वीर्यवतीपरा—

सुवर्णाभा वीरा सुरधरणिनाथाश्रयवती
विजेतव्यालम्बा तुमुलनिनदैः शंखपटहैः।
रणाङ्के वीराणां मनसि विजयोत्साहनपरा
क्वचिद्दाने धर्मे दिशसि निजवीर्यं सुचरितैः ॥४८ ॥

जब वीर रस प्रकट करना चाहती हो तो तुम्हारा रग सुनहरा हो जाता है इन्द्र

तुम्हारे आराध्य बन जाते हैं। विजेय का आलम्बन लिये शख मृदग आदि रणवाद्यो की तुमुल ध्वनि मे योद्धाओं के हृदय मे उत्साह का सञ्चार करने लगती हो। कभी-कभी अपने पुण्य चरित्र मे दानवीर और धर्मवीर बनने का भी मार्ग प्रदर्शित करती हो ॥४८ ॥

भयदा च भयानके—

भीत्युत्पादनतत्परा क्वचिदहो कालाधिरूढाऽसिता
चेष्टाभिर्भयदाभिरेव कुरुषे चित्ते प्रकम्पोदयम्।
वैवर्ण्यं स्खलितञ्च वाचि सहसा सम्पादयन्ती भृशम्
सम्मोहं जनमानसे प्रकुरुषे भीमाकृतिर्भारति! ॥४९ ॥

जब भयानक रस प्रकट करना होता है तब कृष्णवर्ण धारण कर काल पर सवार हो जाती हो। तुम्हारी भयंकर चेष्टाओ से लोगो के हृदय भय से कापने लगते है। तुम्हारा डरावना रूप देखकर लोगो की हवाए उड जाती है वाणी लडखडाने लगती हैं और तुम्हारी भीमाकृति से लोग घबराने लगते है ॥४९ ॥

बीभत्सञ्चजुगुप्सितैः—

चित्रं नीलकलेवरा कृतमहाकालाश्रया भीषणा,
मांसाऽसृक्परिलिप्तविग्रहवती मज्जास्थिमग्नालया।
भीमा प्रेतकरंकदारुणतनु र्निष्ठीवनालम्बिनी
मोहावेगजुगुप्सितैर्वलयिता बीभत्समालम्बसे ॥५० ॥

हे भारति! जब तुम बीभत्स रस का अवलम्बन करती हो तब तुम अपना कलेवर श्याम बना देती हो। महाकाल का आश्रय लेकर भयकर रूप धारण करती हुई, शरीर पर रक्त और मांस का लेप कर देती हो। तुम्हारा निवास मज्जा और अस्थियो से भरा रहता है। प्रेतो के भयावह कंकाल देह पर धारण कर भयंकर बन जाती हो। मुंह से लारे और थूंक टपकता रहता है। तुम्हारे चारो ओर अघोरी और नशाबाजो का जुगुप्सित घेरा बना रहता है ॥५० ॥

भौतिकविज्ञानचमत्कृतिः—

विश्वं नृत्यति दर्पणेऽद्य सदने नानाविधं यान्त्रिके,
निर्दिष्टे पथि प्रत्ययो नहि परं शास्त्रैर्बुधानां मनाक् ।
नास्तिक्यं दितिजादृतं दृढमहो सन्धार्यते मानसे,
मेधादर्पविनष्ट-देवविभवं जातं जगन्मण्डलम् ॥९९ ॥

आज तो घर मे ही यान्त्रिक दर्पण के माध्यम से सारे ससार को विविध घटनाए देखी जा सकती है इसलिए शास्त्रो मे निर्दिष्ट वातो पर वुद्धिमानो का विश्वास नही होता। इसलिये उनके हृदय मे नास्तिकता वढ़ रही है। आज सारा ससार अपने वुद्धिवल के अहकार मे दैवी शक्ति पर विश्वास नही करता ॥९९ ॥

परोक्षे नास्ति प्रत्ययः—

अण्वस्त्रं बहुमन्यते निजधियाऽन्विष्टं जडैः साधनैः,
ब्रह्मास्त्रे नहि प्रत्ययो मुनिवरैर्मन्त्रौजसा भाविते ।
प्रत्यक्षे जनविस्मयोदयकरे किंचाकचिक्योदये
मुग्धोऽयं न परोक्षतामुपगतं प्रत्येति ते वैभवम् ॥१०० ॥

हे भारति ! आज का भौतिकवादी जनविस्मयकारक इस तुच्छ भौतिक चाकचिक्य पर इतना मुग्ध हो गया है कि वह अपनी वुद्धि से भौतिक साधन निर्मित अणु अस्त्र को तो बहुत मानता है परन्तु मुनिजनो द्वारा मन्त्र शक्ति निर्मित ब्रह्मास्त्र पर विश्वास नही करता। आज प्रत्यक्ष के प्रबल प्रभाव से परोक्ष की विभूतियो पर भी विश्वास नही होता ॥१०० ॥

चिकित्सा-चातुर्य-गर्विताः—

चिकित्सा चातुर्योदितमदयुताश्चाद्य भिषजः,
प्रकामं माद्यन्ते किरण-कृत-शल्योपकरणाः ।
यमं जेतुं सिद्धा इव नवनवान्वेषणपराः
न तेषां विश्वासः परममृतमृत्युञ्जयमनौ ॥१०१ ॥

अपने किरणकृत शल्य चिकित्सा के चातुर्य पर गर्व करने वाले चिकित्सक भी नये-नये आविष्कारो से यम को जीतने की तैय्यारी करने में लगे हुए है उनका मृत्युञ्जय

मन्त्र पर अब कोई विश्वास नही है ॥१०१ ॥

नवनवोन्मेषगर्विताः—

एते भौतिक वादिनो नवनवोन्मेषेऽतिगर्वान्विताः,
मेधामेदुरतातिदर्पगुरव स्वीयोपलब्धौ भृशम् ।
दृप्यन्ते निजबुद्धिवैभवफलं मत्वामृषाऽनीश्वराः
ते मूढाः नहि जानतेऽस्ति सकलं त्वत्प्रेरितं भारति ! ॥१०२ ॥

ये नवीन भौतिकवादी, अपने नूतन अविष्कार और उपलब्धियो मे अपनी विलक्षण बुद्धि का गौरव मानते है । वे अपनी बुद्धि का चमत्कार मानने वाले अनीश्वरवादी मूर्ख यह नही जानते कि यह सब तुम्हारी प्रेरणा का ही फल है ॥१०२ ॥

न विदितं भौतिकानामध्यात्मगौरवम्—

चित्रं शोणितरञ्जितेऽवनितले मृत्योर्महामण्डपे,
युद्धोन्मादविनष्टबन्धुगुरुताभावे महासङ्गरे ।
मृत्योर्मोहनिवारणाय सहसा केयं त्वया वाहिता
ज्ञानस्यामृतवाहिनी नवरसा गीतेति नो ज्ञायते ॥१०३ ॥

हे भारति ! आश्चर्य है कि आज के भौतिकवादी भी इस बात को नही जानते है कि महाभारत जैसे भीषण युद्ध प्रागण मे, जहॉ युद्धोन्माद मे बन्धुजनो की गुरुता भी नष्ट हो गई थी, जो योद्धाओ के शोणित से रञ्जित होने जा रहा था तथा जो मृत्यु का महामण्डप लग रहा था, वहां सहसा तू ने मृत्युमोह को दूर करने वाली ज्ञानामृत भरी गीता गंगा को बहा दिया और वही भगवान् का विराट रूप भी दिखा दिया ॥१०३ ॥

नाना तर्कविकर्तजालजटिलैः शास्त्रैर्धिया कल्पितैः
द्वैताद्वैतविशिष्ट केवलमतैरव्याकृतो व्याकृतिम् ।
नीतोऽयं तव वल्लभोऽपि रमते नानामतैर्मण्डितो
निर्द्वन्द्वोऽपि च लक्ष्यतेऽद्य भुवने द्वन्द्वप्रियो नायकः ॥१०४ ॥

हे भारति ! तुमने ही नाना प्रकार के तर्क विर्तको के जाल से जटिल शास्त्रों के

माध्यम से द्वैत अद्वैत विशिष्टा द्वैत केवलाद्वैत आदि भेदो के द्वारा उस अव्याकृत ब्रह्म को भी व्याकृत बना दिया। तूने अपने बल्लभ ब्रह्म को नाना मतो का मण्डन पहना कर ऐसा बनादिया हैं कि वह निर्द्वन्द्व भी, लोगो के बीच मे द्वन्द्व करने वाला नायक प्रतीत होता हैं ॥१०४ ॥

जाता त्वमेव सदसद्रचनाधिनाथा,
कालक्रमेण कुरुषे धिषणाविमोहम्।
येनास्मिताहतधियस्तव कान्तमेव,
निन्दन्त्यचिन्त्यचरितं जगदेकमूलम् ॥१०५ ॥

तुम ही सत् असत् रचनाओ की स्वामिनी बनकर समय-समय पर लोगो मे मतिभ्रम करती हो जिसके कारण अपनी बुद्धि का अहंकार करने वाले बुद्धिजीवी, ससार के मूल कारण, अचिन्त्य स्वरूप तुम्हारे पति की ही निन्दा करने लगते हैं ॥१०५ ॥

यान्त्रिकेऽपि युगे दिश्यते देवप्रभावः—

कान्तोऽपि कौतुकमिदं तव पश्यतीह,
मौनं च तिष्ठति विविच्य युगप्रवृतिम्।
जाते स्वकीयमतिदर्पयुते तु लोके,
दत्वाऽऽहतिं दिशति देवबलं स्वकीयम् ॥१०६ ॥

हे भारति ! तुम्हारा पति परब्रह्म भी युग प्रवृत्ति का विचार करता हुआ तुम्हारे इस भौतिक कौतुक को देखता रहता है परन्तु जब कभीयह लोक तुम्हारे द्वारा प्रदत्त बुद्धि का अति अहंकार करने लगता है तब वह भी एक झटका देकर अपनी देवशक्ति दिखा देता है ॥१०६ ॥

यन्त्रैः संयतविग्रहञ्च पवनं दृष्ट्वा जनैर्नोदितम्,
लोकानां हितकारकञ्च मनुजेनाकल्पितैः साधनैः।
माद्यन्ते खलु तेन भौतिकधियो मत्वात्ममेधाश्रियम्,
झञ्झा झम्पनविप्लवे समुदिते देवस्मृतिर्जायते ॥१०७ ॥

जव लोक कल्याण कारक वायु देवता को यन्त्रो मे बांधकर ये भौतिकवादी अपनी इच्छा के अनुसार काम कराने लगते है तव उन्हे अपने वुद्धिबल का अहकार हो जाता है और वे दैवी शक्ति का उपहास करने लगते है। यह देखकर तुम्हारे स्वामी झंझा का एक ऐसा झटका देते है कि वह अहकारी इस प्रलयकर विप्लव को देखकर देवप्रभाव को मानने लगता है ॥१०७ ॥

एनां समस्तजननीं वसुधां गभीराम्
सर्वाभिपोषणरतां बहुरत्नगर्भाम्।
उद्वेजयन्ति खननैः खलु यान्त्रिका ये
मुह्यन्ति तेऽपि लघुना धुनितेन तस्याः ॥१०८ ॥

ये अपने भौतिक साधनो पर गर्व करने वाले यान्त्रिक, समस्त पदार्थो की जननी सवका पोषण करने वाली इस धीर गम्भीर, वहुरत्नगर्भा वसुन्धरा को प्रतिदिन भूगर्भस्थ पदार्थो के लिये खोदते हुए उसे पीड़ित करते रहते हैं पर यह जड समझी जाने वाली पृथ्वी जव कभी अपना अग थोड़ा-सा भी हिलाती है तो उनके होश उड जाते हैं ॥१०८ ॥

धन्वन्तरि धृतसुधाकलशोऽपि देवः
नव्याभियन्त्रमदिरैरुपहस्यतेऽद्य।
रोगे वरिष्ठगदहैर्गणिते त्वसाध्ये,
दीनाननाश्च चरमे चरकं स्मरन्ति ॥१०९ ॥

हे भारति ! आज इस नवीन शल्य चिकित्सा पर अहकार करने वाले चिकित्सक अमृत कलशधारी आयुर्वेद के अधिष्ठाता देव धन्वन्तरी का उपहास करते है परन्तु वे ही वरिष्ठ चिकित्सक जब किसी असाध्य रोग को पाते है तो सिर झुकाकर आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य चरक का स्मरण करते है ॥१०९ ॥

एते नास्तिकनायका नवनवाः चार्वाकमार्गानुगाः
धृत्वा भौतिकवैभवोदितमदं निन्दन्ति देवार्चनम्।
प्राप्तेऽतर्कितसंकटे तु सदने लोकायता धीवराः
देवानां सदनं नमन्ति विनता नष्टात्मतर्काश्रयाः ॥११० ॥

ये नये-नये चार्वाक, नास्तिकों के नेता अपने भौतिक ज्ञान के घमण्ड मे प्राय देवपूजा की निन्दा किया करते है, वे ही मेघा प्रमत्त लोकायत जब कभी असभावित सकट मे फस जाते हैं तब सारे बौद्धिक तर्क भुलाकर मन्दिरो की धूल चाटने लगते हैं ॥११० ॥

भूमौ सम्प्रत्यभिनवभवं दृश्यते दृश्यजातम्
लोकश्चायं भजति सुविधां भौतिकीं येन हृद्याम् ।
मत्वैतद् वा निजमतिकृतां दृप्यतां काममेषः
जानीते नो तव हि कलितं स्वात्ममेधाप्रमत्तः ॥१११ ॥

पृथ्वी पर आज जो नये-नये दृश्य दिखाई दे रहे हैं तथा जिसके द्वारा लोग सुख-सुविधा भोग रहे है, इसे चाहे आज का भौतिकवादी अपनी वुद्धि का परिणाम समझकर अहकार करे परन्तु यह सब तुम्हारा ही प्रभाव है इसे यह मेधामत्त नही जानता ॥१११ ॥

मेधागर्वोमृषाऽस्त्येषाम्—

मेधालम्बनगर्विताः नहि जडास्ते कोविदा जानते
पन्थानं दिशते हि केवलमियं नो लक्ष्यलाभं परम् ।
कामं तिष्ठतु कामिनीव धिषणा पार्श्वे प्रियालम्बिनी
दत्तेऽस्याः विरहोऽपि मोदमतुलं काले क्वचिच्चेतसे ॥११२ ॥

आज अपने भौतिक लाभो पर बुद्धि का गर्व करने वाले मूर्ख ये नही जानते कि बुद्धि तो केवल मार्गदर्शन मात्र करती है, उससे जीवन का लक्ष्य प्राप्त नही किया जा सकता, आज तो बुद्धि अपने प्रियतम के पास बैठी प्रेयसी की तरह अच्छी लगती हैं परन्तु कभी-कभी इस बुद्धि का विरह भी अच्छा लगता है ॥११२ ॥

मन्दानां वा, चतुरसुधियां, स्वप्नसञ्चालिनी त्वम्
मूकानामप्यतिलघुतया प्राणभाषासवित्री
रेखा लेखाः जनकरगताः भालगाः वा पदस्थाः
नो तेऽगम्याः किमिति वितथा वीभते धीकुलिङ्गः ॥११३ ॥

हे भारति ! चाहे मन्दवुद्धि हो या चतुर विद्वान्, सवके स्वप्नो का तुम ही सञ्चालन करनी हो ; गूगो की भी तुम मौन वाणी हो । मनुष्यो के हाथ, पांव और भाल की रेखाओ का भी लेखा-जोखा तुम ही रखनी हो इस विषय मे मनुष्य अपनी बुद्धि का व्यर्थ मे ही अभिमान करता है ॥११३ ॥

प्रकृतिर्विकृतिं गता—

वायोर्विचित्रागतिः—

ख्यातोगन्धवहोऽनिलो मरुदयं वायुर्नभस्वान् पवः
शीतोष्णैर्निजविभ्रमैश्च विदधे लोकेऽमुदामोदनम् ।
झञ्झा झम्पन लम्फनैश्च बहुशश्चक्रेमहाविप्लवम्,
सोऽपि त्वत्कृपया पुराणभणिते लेभे पदं दैविकम् ॥११४ ॥

हे भारति ! यह गन्ध फैलाने वाला पवन जो अनिल, मरुत् वायु, नभस्वान् आदि नामो मे पुकारा जाता है तथा जो कभी ठडी कभी गरम गति से लोगो को सुख-दुःख पहुंचाता रहता है । कभी-कभी तो यह अपने झञ्झा के झकोरो से महान् विप्लव मचा देता है । ऐसे प्राकृत को तुमने पुराणो मे देवता का स्थान प्रदान करवा दिया ॥११४ ॥

पुरा देवादृतोऽधुना दासीकृतः—

कृत्वा कश्यप वीर्यजं दितिसुतं देवादृतं तं सुरम्
अर्घ्याङ्घ्रिं मखमोदभाजिनमपि श्रौताध्वरे चकृषे ।
स एवाद्य सुरत्व सौख्यविधुरश्चित्रं त्वया भारति !
यन्त्रैर्यन्त्रितविग्रहो नवयुगे दासीकृतो दूयते ॥११५ ॥

यही नही तुमने उसे कश्यप ऋषि के अश से दिति के गर्भ से जन्म भी दिलवा दिया जिसे मरुद् गणो के रूप मे देवताओ मे स्थान मिला जिससे वह पूजनीय बन गया और उसे श्रौतयज्ञो में आनन्द लूटने का पात्र बना दिया । उसे ही आज देवत्व के सौभाग्य से वञ्चित कर यन्त्रों मे बंधा इस युग का दास बना दिया जिसमे वह दुखी हो रहा है ॥११५ ॥

प्रदूषण-प्रसारकः—

धूम्रोद्गारपरायणानि परितो धावन्ति यानान्यहो !
नित्यं प्राणितपोषकञ्च पवनं कुर्वन्त्यहो दूषितम्।
यः पूर्वं क्रतुधूमसौरभसुधासंवाहकोऽभूद्दिशाम्
सोऽयं यन्त्रसमुदगतेन कुरुते धूम्रेण दिग्दूषणम्॥११६॥

हे भारति ! देखो आज प्रकृति मे भी कितना विकार आ गया है। चारो ओर धूआ फैलाने वाले यन्त्र वाहन दौड़ रहे हैं जिससे प्राणियो का प्राणपोषक पवन दूषित हो रहा है। ो अग्नि पूर्वकाल मे यज्ञधूम्र की सौरभसुधा को चारो ओर फैलाया करता था वही आज यन्त्रो के माध्यम से दिशाओं मे प्रदूषण फैला रहा हैं॥११६॥

वह्नेर्हतं वैभवम्—

वह्निर्वायुसखा कृपीटजनकः शुष्माऽश्रयाशी मतः,
लेभे त्वत्कृपया सुराग्रपदवीं यज्ञेषु चाप्यर्ध्यताम्।
मन्ये लोकविमोहनाय विहितश्चित्राकृतिः सोऽप्यहो !
द्वेशीर्षे करसप्तकं त्रिपदकं शृङ्गैश्चतुर्भियुतः॥११७॥

हे भारति ! जो अग्नि किसी समय वायु सखा, जल जनक, शुष्मा, आश्रयाशी आदि नामो से पुकारा जाता था तथा जिसे तुमने देवताओ के अग्रणी रूप मे पूजनीय बनाया था उसी को दो सिर वाला सात हाथो वाला, चतुःशृगी विचित्र तिपाया भी बना दिया था॥

घृताशी तैलपः कृतः—

एष स्वस्तिकमण्डितः सुखरः स्वाहाप्रियावल्लभः,
ख्यातश्चाग्निपुराणकीर्तनगुरुर्वैश्वानरः पावकः।
कालेऽस्मिन् नवयन्त्र जालकलुषे यन्त्रेषु संयन्त्रितः
पानं हा कुरुते घृताशनमुखस्तैलस्य त्वन्नोदितः॥११८॥

वह अग्नि देव तुम्हारी कृपा से अपनी प्रिया स्वाहा के साथ मंगलकारी देवता बना और यही वैश्वानर पावक अग्निपुराण का व्याख्याता भी हो गया। वही घृतपान

करने वाला हव्यवाट् आज तुम्हारी प्रेरणा से नये यन्त्रजाल मे मलिन यन्त्रो मे बधा हुआ तेल का पान कर रहा हैं ॥११८ ॥

हतवीर्यो हुताशनः—

मन्त्रैरध्वरसर्पिषा हुतभुजः पीनस्य धूमध्वजैः
एणाक्ष्यः परिपीड़िताः समभवन् भर्त्राग्निहोत्रेसमम्।
दुर्दैवान्ननु सोऽद्य धूम्रविधुरः पाकालये पावकः
बालाभिर्धुतकुड्मलैरनुदिनं चोद्वेज्यते भूयशः ॥११९ ॥

जो अग्नि किसी समय यज्ञो मे मन्त्रो द्वारा घृताक्त हविष्यान्न से परिपुष्ट बना, अपने पति के साथ अग्निहोत्र मे बैठी मृगाक्षियो के नयनो को कुण्ठित किया करता था वही आज दुर्भाग्य मे धूम्रविधुर बना पाकशाला मे बालिकाओ द्वारा चिन्गारी फैंकने वाले छोटे-छोटे खिलौनो से छेडा जाता है ॥११९ ॥

लोहकुतुपेऽस्तिकीलितः—

यः कष्टेन करीषकाष्ठकुलके चक्रे हुताशः कृपाम्
चुल्लीचुम्बनहव्यकव्यरसिको दर्पेण दीप्तिं ययौ।
सोऽयं हा गड़ितोऽद्य लोहकुतुपे मित्रैः कलत्रैर्विना
कालेऽस्मिन् कृशतां गतो हि कुरुते भृत्यां हताशः कलौ ॥१२० ॥

जो चुल्ली लम्पट, हव्यकव्यरसिक हुताशन, पूर्वकाल मे काष्ठ कण्डो के समूह म भी भूरि प्रयास करने पर भी अपनी दीप्ति दिखाने मे दर्प करता था। वही आज लोहकूपी मे बन्दी बना हुआ मित्र कलत्र के वियोग मे दुबला-पतला निराशभाव से दासता भोग रहा है ॥१२० ॥

यज्ञानां नवमण्डपेषु मुमुदे यस्तर्पितः सर्पिषा,
वेदज्ञैर्विधिना च वर्धितवपुर्लोकैषणापूरकः।
श्रौते चारणिमन्थनेन महता चक्रे स्फुलिंगोदयम्,
तस्यैषा लघुतूलिकाद्य कुरुते ज्वालावलीजृम्भणम् ॥१२१ ॥

ऐसा समय भी था जब यह अग्निदेव, यज्ञमण्डपो मे घृताहुति से, वेदज्ञ विद्वानो द्वारा पोषण पाकर प्रसन्न हुआ उनकी लोकेषणाओ को पूर्ण करता था। वह भी काल था जब श्रोत्रिय लोग इसे अरणि मन्थन द्वारा उसे प्रकट किया करते थे। वही आज यन्त्र की लघु तूलिका से प्रज्वलित हो जाता है ॥१२१ ॥

स्वाहाऽश्लिष्टकलेवरश्च बुभुजे यज्ञेषु भोगान् पुरा,
सोऽदिष्ट्या न महानसेऽपि लभते ग्रासं वराकोऽनलः।
शीतोष्णत्वविधेयतामुपगतो यन्त्रेऽर्पितस्तापसः
स्मारं स्मारमयञ्च जीवति गतं लीनःशमीकोटरे ॥१२२ ॥

जो अनल देव अपनी प्रिया स्वाहा के साथ नानाविध घृताक्त भोग प्राप्त किया करता था। उसे आज घृताक्त ग्रास भी सुलभ नही है। यह तपस्वी देव, आज यन्त्रो मे जकडा एक दास की तरह कभी ठडक तो कभी गरमी प्रदान करता है। समय पाकर कभी-कभी शमी की गोद मे बैठकर अपने बीते युग की याद करता है ॥१२२ ॥

वातुलोऽद्यहुताशनः—

मन्ये कालवितर्जितोऽद्य हुतभुक् विक्षिप्तचेताः वृतः
पीत्वा यो गरलोपमं नवशिलातैलं हि गव्याकृतिम्।
उन्मतो वडवामुखो लयकरो दावानलो भीषणः
धूम्राक्षं वसुधा-सुधाहरमिमं नित्यं वमन् जृम्भते ॥१२३ ॥

हे भारति ! आज अग्नि की यह दशा देखकर ऐसा लगता है कि यह हविष्य भोक्ता हुताशन काल की वितर्जना पाकर विक्षिप्त हो गया है, जो घी की आकृति वाले इस विषतुल्य पेट्रोल को पीकर उन्मत्त-सा बना, कभी समुद्र मे वडवानल वनकर, कभी वनो मे दावानल बनकर, पृथ्वी की सुधा का अपहरण करता हुआ धूआ उगलता दानव-सा लगता है ॥१२३ ॥

गता दीपशिखा दिव्या—

यस्या दीप्तितले चचाल चतुरा विद्यानिधेर्लेखनी,
दिव्या दीपशिखा जगाम जगति ख्यातिं कवेर्यत्पदे।

लक्ष्मीः भूमितलं समेत्य मुमुदे दीपावलीमण्डपे
सा कालेनाऽनलकल्पिता हि सुषमा हा हा हता भारति ! ॥१२४॥

हे भारति ! जिसके प्रकाश मे विद्यानिधियो की चतुर लेखनी चला करती थी, जिसके चरणो मे विश्वविख्यात महाकवि कालिदास की दिव्य दीप शिखा ने विश्व मे ख्याति प्राप्त की, जो लक्ष्मी दीपावली के मण्डप मे पृथ्वी पर आकर जिसके नीचे आनन्द का अनुभव करती थी, उस तुम्हारी अग्निकल्पिता सुषमा को आज काल ने मिटा दिया है। यह भी तुम्हारी ही लीला है ॥१२४॥

देवा अमी दिविषदो धरणीमुपेताः
यन्त्राभियन्त्रितसमस्त-गति-प्रसाराः।
त्वद् बोधितेन हि पथा निगृहीतगत्यः
मौनं चरन्ति जनकिंकरतामुपेताः ॥१२५॥

स्वर्ग मे रहने वाले ये देवता भी तुम्हारे सकेत पर अपनी गति को रोक कर आधुनिक यन्त्रो के नियन्त्रण मे बन्धे हुए चुपचाप इन भौतिक लोगो के दास बनकर कार्य कर रहे है ॥१२५॥

वसुधा सुधा-वञ्चिता—

या विष्णु-भार्या भणिता धरित्री
प्राप्या च पुंभिः खलु यातिपुण्यैः।
पुरा हिरण्याक्षहतेन साप्यहो
पातालकल्के दितिजेन कुण्ठिता ॥१२६॥

जो पृथ्वी विष्णुपत्नी कहलाती थी जिस पर अनेक पुण्यो से लोग जन्म पाते है। पूर्वकाल मे जब हिरण्याक्ष जैसे दैत्य ने उसे रसातल के कीचड मे फैक दिया था ॥१२६॥

पयोधिशाटीपरिवेष्टिता शिवा
पयोधरैः पीनतमा च पर्वतैः।
समुद्धृता सापि वराहमूर्तिना
नारायणेनात्र च द्रंष्ट्रयात्मनः ॥१२७॥

तव समुद्र शाटी धारिणी, पर्वत स्तनी, पीन कलेवरा उस पृथ्वी का उद्धार स्वय भगवान् विष्णु ने वराह रूप धारण कर अपनी दष्ट्रा से किया था ॥१२७ ॥

चराचराणां प्रथिता प्रतिष्ठा
प्रशस्यते कामदुधेति याऽवनिः
सैवाद्य यन्त्रैर्दितिजैर्विधीयते
गवां सुधासृष्टिवियोगरूक्षा ॥१२८ ॥

वही चराचर जीवों को धारण करने वाली काम दुधा वसुन्धरा, आज के उदरविदारक यन्त्रो मे विदीर्ण की जा रही हैं। आज के ये नव दैत्य इस धरा को गौओ की अमृतवृष्टि से भी वचित कर रहे है ॥१२८ ॥

नूनं विषण्णा कलिनार्दितेव
विलोक्यतेऽद्यापि च भूमिरेषा।
प्रतीक्षमाणेव हि कातराक्षी,
परिक्षितं दण्डधरं नृपालम् ॥१२९ ॥

वस्तुत: आज भी यह पृथ्वी कलियुग की पापवृत्तियो से पीडित दिखाई पड़ रही है। और ऐसा लगता है कि मानो वह अपने कातर नयनो से उस दण्डधारी धर्मात्मा राजा परीक्षित की प्रतीक्षा कर रही हो ॥१२९ ॥

मन्ये तवैतद् विदितं समस्तम्
सनातनायाः खलु देवतायाः।
कथं पुनस्तत् परिवीक्षमाणा
प्रतीक्षसे कस्य विभोर्विनोदनम् ॥१३० ॥

हे भारति ! आप तो सनातन देवता हो और समस्त भूत भविष्यत् एवं वर्तमान को भली-भाति जानती हो फिर भी ऐसा लगता है कि आप भी किसी सर्वव्यापी की प्रेरणा की प्रतीक्षा कर रही है ॥१३० ॥

क्रन्दतीह नन्दिनी—

वसन्ति यस्या वपुषि प्रपूते
देवाः समस्ता इति शास्त्रदिष्टम्।
पयोनिषण्णश्च पयोधिदेवः
यदाज्यपुष्टाः सकलाश्च यज्ञाः ॥१३१॥

शास्त्रो मे कहा गया है कि गाय के शरीर मे समस्त देवता निवास करते है। इसके दूध मे सागर देवता का निवास है। इसके घृत से समस्त यज्ञ परिपूर्ण होते है ॥१३१॥

लक्ष्मी निवासं कुरुते च देवी
यद् गोमये शौचविधानमूले।
यत्पञ्चगव्यं जनपापहारि
दिव्यास्ति धेनुः श्रुतिशास्त्रगीता ॥१३२॥

अपने लेपन से स्थान को पवित्र करने वाले इसके गोबर मे लक्ष्मी का वास माना गया है तथा इसके दूध दही, घी, गोमय और गोमूत्र से बने पञ्चगव्य मे शरीर के समस्त दोष निवारण के गुण है अत शास्त्रो ने गाय को देव स्वरूप माना है ॥१३२॥

या रुद्रमाता गणिताऽगमेषु
मता प्रिया या तनुजा वसूनाम्।
स्वसा तथाऽदित्यगणस्य भद्रा,
सिद्धं तदेतद्वचनैः ऋषीणाम् ॥१३३॥

वेद शास्त्रो मे गौ को रुद्रमाता वसुदेवो की प्रियपुत्री एव आदित्यगणो की बहिन कहा गया है। यह श्रुतिवचनो से भी प्रमाणित है ॥१३३॥

तीर्थानि सर्वाणि वसन्ति यत्र
देवैश्च सेव्या भणितास्ति भद्रैः।
सैवाद्य हा सम्प्रति कामधेनुः
वधस्थले क्रन्दति नन्दिनीयम् ॥१३४॥

जिस कामधेनु के शरीर मे समस्त तीर्थ निवास करते है, जो समस्त देवताओ की भी पूजनीय है, एव जिसकी सेवा से दिलीप राजा ने रघु जैसा प्रतापी पुत्र पाया, हे भारति ! वह नन्दिनी आज वधशाला मे चिल्ला रही है ॥१३४ ॥

धेनुर्धरा भारति ! जह्नुकन्या
देवत्वभावं गमितास्त्वयैव ।
क्लिश्यन्ति भूमाविह भारतस्य,
त्वया कथं तत् प्रविलोक्यतेऽद्य ॥१३५ ॥

हे भारति ! तुमने ही शास्त्रो के माध्यम से कहा है कि गाँ, पृथ्वी और गंगा, देवता है आज उन्ही देवताओ की इस भारतभूमि पर दुर्दशा हो रही है। उन्हे तुम अपनी आँखो से कैसे देख रही हो ? ॥१३५ ॥

गावोऽप्यहो भारतभूमिभागे
विदेशिवंश्याः परितोऽद्य लक्ष्याः ।
पीनाः प्रकामं परमात्महीनाः
औधस्यमम्भः सितमेवयासाम् ॥१३६ ॥

हे भारति ! आश्चर्य तो यह है कि आज इस भारतभूमि पर विदेशीवंश की ही गाए चारो ओर दिखाई पड रही है वे शरीर मे तो वहुत मोटी ताजी दिखाई पड़ रही है परन्तु वे गोत्व के आत्मभाव से हीन है जिनका दूध भी सफेद पानी-सा प्रतीत होता है ॥१३६ ॥

लोकवाणीविमोहः —

जाने जाता त्वमसि वरदे ! लोकवाणी विमुग्धा
येनाद्याऽयं लगति रुचिरो नामृतावाग् विलासः ।
नानाभाषाविलसनपरा वृत्तपत्रानुरक्ता
लोकानां वै हरसि हृदयं चारुवर्णैः सचित्रैः ॥१३७ ॥

हे भारति ! ऐसा लगता है कि तुम भी आज इस लोकवाणी पर मुग्ध हो गई हो जिसके कारण आज तुम्हे इस देववाणी का वाग् विलास अच्छा नही लगता ।

जिसके कारण तुम विविध भाषाओ के साथ मनोविनोद करती हुई इन समाचार-पत्रो पर आसक्त हो गई हो जिनके सुन्दर सचित्र वर्णो से लोगो का मन मोहित कर रही हो ॥१३७॥

युगप्रवृत्तिनिरता—

युगप्रवृत्तौ निरता त्वमद्य
मन्ये पुराणं परिवर्जयन्ती।
विधाय दूतं जनवाणिपत्रम्
तनोषि मायां भुवने स्वकीयाम्॥१३८॥

कही ऐसा तो नही है कि तुम अपनी पुराणी परम्परा छोडकर इस नये युग की प्रवृत्ति को बढाने मे लग गई हो। जो तुम आज इन नये समाचार-पत्रो को अपना दूत बनाकर अपनी ही धरती पर अपनी माया फैला रही हो ॥१३८॥

विज्ञापनैर्वञ्चितलोकचित्ता,
दिशस्यसारानपि सारगर्भान्।
कामार्थचक्रे विनिपातयन्ती
मतिभ्रमं त्वं विदधासि पुंसाम्॥१३९॥

आज इन समाचार पत्रो मे प्रकाशित विविध विज्ञापनो के माध्यम से लोगो का मन आकृष्ट करती हुई निःसार वस्तुओ को भी सारवान् बतला रही हो। इन विज्ञापनो से ठगे जा रहे लोगो को अर्थ और काम के चक्कर मे डालकर उनका मतिभ्रम कर रही हो ॥१३९॥

विलासदृश्यैर्ललिताङ्गनानाम्,
क्रीडाकलाभिर्नवयौवनानाम्।
सकौतुकैर्बालविनोद-वृत्तैः
पत्राणि लोकस्य मनो हरन्ति॥१४०॥

अपने कलेवर मे छपे सुन्दरियो के विलासपूर्ण दृश्य, नवयुवको का क्रीडा कौशल, एवं कौतुक भरे बालविनोद के द्वारा ये पत्र लोगो का मन बहलाते हैं॥

स्नानं न सन्ध्या न च देवपूजा
प्ररोचते पत्र-समुत्सुकेभ्यः।
विहाय सर्वं निजकार्यजातं
पत्रं पठित्वैव सुखं श्वसन्ति ॥१४१ ॥

इन समाचार पत्रो की प्रतीक्षा मे लोगो को अपने प्रात· कृत्य स्नान सन्ध्या देवपूजादि भी याद नही रहते। वे सारे काम-काज छोडकर इन पत्रो को पढकर ही सुख की सास लेते है ॥१४१ ॥

यन्त्राढा च मायया—

यन्त्रारूढा विविधविषयांन् वृत्तदूतान् नुदन्ती
पारं वार्धेर्धटितमपि वा सत्वरं टङ्कयन्ती।
श्लिष्यैर्वृत्तैर्विबुधकठिनी-निर्गतैश्चारुलेखैः
गद्यैः पद्यैश्चरसि भुवने रञ्जयन्तीह विश्वम् ॥१४२ ॥

हे भारति ! वस्तुतः इस नये युग मे यन्त्रो के माध्यम से नाना प्रकार के समुद्र पार के समाचार प्रकाशित करवाती हुई, विद्वानो की लेखनी से निकले सुन्दर लेख, मनोरञ्जक समाचार, गद्यपद्यादि के द्वारा संसार का मनोरञ्जन करती हुई चारो ओर विचरण कर रही हो ॥१४२ ॥

लीला त्वदीया खलु भारतीयम्,
संप्रेरिता भातिनु विष्णुनैव।
युगोपकारे निरतः सदायम्
भूमावसंख्यान् कलति प्रसङ्गान् ॥१४३ ॥

हे भारति ! हमे ऐसा लग रहा है कि तुम्हारी यह लीला भी विष्णु भगवान् से ही प्रेरित हो रही है जो सर्वदा युग के अनुसार पृथ्वी पर नाना प्रकार के प्रसङ्ग उपस्थित करते रहते है ॥१४३ ॥

मेधावलेपाः प्रगति-प्रसक्ताः
स्रष्टास्त्वया सम्प्रति चारुवाचः।
कथाभिरेते नवकल्पिताभिः
मतिं जनानां परिवर्तयन्ति ॥१४४ ॥

उनकी प्रेरणा से ही तुमने आज अपनी बुद्धि पर गर्व करने वाले प्रगतिवादी चार्वाक (नास्तिक) पैदा कर दिये है जो अपनी नवकल्पित कथाओ से लोगो की बुद्धि को परिवर्तित कर रहे है ॥१४४ ॥

पौराणिकान् देवकथाप्रसंगान्
लोकप्रवृत्या सह योजयन्तः।
अतर्क्यभावं निहितञ्च तत्र
तर्कैः स्वकीयैः परिचालयन्ति ॥१४५ ॥

वे लोग पौराणिक कथा प्रसङ्गो को लोक व्यवहार के साथ जोडकर उन कथाओ मे निहित अलौकिक भाव को अपने तर्को मे विचलित कर रहे है ॥१४५ ॥

यज्ञार्चना मन्त्र-जपादि कृत्यम्
शास्त्रोदिताचार-विचार-वृन्दम्।
पाखण्डपिण्डं परिकीर्तयन्तः
श्रद्धां जनानां विनिहन्ति विज्ञाः ॥१४६ ॥

ये नास्तिक यज्ञ, अर्चना, मन्त्र जप आदि शास्त्रो के आचार-विचारो को निरा पाखण्ड वतला कर लोगो पर जमी श्रद्धा को खण्डित कर रहे है ॥१४६ ॥

लोकापवादं निजशासनस्थम्
हर्तुं स्वराज्यात् नृप रामचन्द्रः।
प्राणप्रियामप्यजहत् स्वभार्याम्
सोऽद्यास्ति रामो महिलापमानी ॥१४७ ॥

जिस पुरुषोतम भगवान् रामचन्द्र ने अपने शासन पर लगे लोकापवाद को दूर

अद्भुते चाश्चर्यदा—

आश्चर्योदयकारिणी क्वचिदहो गन्धर्वदेवार्चिका,
संश्रित्याद्भुतमिन्द्रजालकलितं पीताम्बरावेष्टिता।
नानावेगवितर्कविभ्रमसमुत्कण्ठाकरैश्चेष्टितैः
लोकान् विस्मयकारकैः प्रकुरुषे मुग्धान् विदग्धान्
निजैः ॥५१ ॥

जब तुम अद्भुत रस प्रवाहित करना चाहती हो तब पीतवस्त्र पहनकर गन्धर्वो की उपासिका बन जाती हो। आश्चर्यजनक इन्द्र जालो का प्रदर्शन करती हुई, नानाप्रकार के आवेग, वितर्क, सभ्रम और उत्कण्ठा जगाने वाले विस्मयकारी कृत्यो से विदग्धजनो का भी मन मोह लेती हो ॥५१ ॥

शान्ते रागविवर्जिता—

कुन्देन्दुश्रियमाश्रिता क्वचिदहो नारायणोपासिका,
शान्ता विश्वविलासवस्तुनिवहे निःसारतावेक्षिणी।
आलम्ब्यात्मविशुद्धरूपमनघं पुण्यार्जनोत्कण्ठिता
रागद्वेषविवर्जिता हृदि सदा वैराग्यमाराध्यसि ॥५२ ॥

जब तुम शान्त रस प्रदर्शित करना चाहती हो तो, कुन्द और चन्द्र से श्वेत वस्त्र पहनकर शान्तभाव से नारायण की उपासना मे लग जाती हो। ससार की समस्त विलास वस्तुओ को निस्सार समझकर, आत्मा के निर्मल स्वरूप का ध्यान करती हुई पुण्य कर्मो मे व्यस्त हो जाती हो। हृदय से सारे रागद्वेष निकालकर सर्वदा वैराग्य की ही चर्चा करती हो ॥५२ ॥

वात्सल्ये डिम्भलालनम्—

क्वचिद् डिम्भालम्बा वससि सदने चारुचरिते!
शिशूनङ्के कृत्वा दिशसि निजवात्सल्यविभवम्।
विचुम्बन्ती गण्डं स्मितरतशिशोः स्तन्यसजुषः
यशोदेवानन्दं जनयसि सतां कृष्णजननी ॥५३ ॥

जब तुम वात्सल्य रस वितरित करती हो, तब कृष्ण जननी यशोदा की तरह बाल गोपाल के प्रति अपना अनुराग दिखाकर सहृदयों का मन मुग्ध कर देती हो। सुन्दर सदन में शिशुओं को गोद में बिठाकर अपना स्तनपान कराती हुई, उन बाल गोपालों का कपोल चूमकर वात्सल्य भाव प्रकट करती हो ॥५३ ॥

छन्दोगीतनिबन्धिनी—

स्निग्धाङ्गी त्वं गुरुलघुगुणैर्गुम्फितैर्वर्णमात्रा-
छन्दोबन्धैर्ललितवसनैर्भूषिताङ्गी वरेण्या।
लब्ध्वा कण्ठे स्वरलययुतं गीतिमाधुर्यभावम्
शब्दार्थालंकृतिभरयुता राजसे विश्वहृद्या ॥५४ ॥

हे भारति ! जब तुम गुरु लघु सूत्रों में ग्रथित वर्णमात्रा बन्धों से सुसज्जित छन्द वस्त्र धारण करती हो तब तुम्हारे कोमल अंग बहुत सुन्दर लगते हैं। तथा जब इन ललित अंगों को शब्द और अर्थ के अलंकारों से सजाकर, स्वर और लययुक्त मधुर संगीत अपने कंठ से प्रकट करती हो तब सारा संसार मुग्ध हो जाता है ॥५४ ॥

कवीनां जननीप्रिया—

वाल्मीकिस्ते भजति कृपया स्थानमाद्यं कवीनाम्
व्यासो विन्दत्यमलसुरभिं मत्स्यगन्धात्मजोऽपि।
जातश्चायं कविकुलगुरुः कालिदासो विलासी
लब्ध्वाश्लेषं तव नु सुभगे ! भावयेऽमन्दमोदम् ॥५५ ॥

हे भारती ! तुम्हारी कृपा से ही वाल्मीकि कवियो से प्रथम स्थान पाकर आदि कवि कहलाया, महर्षि वेद व्यास मत्स्यगन्धा का पुत्र होकर भी महाभारत, भागवत पुराणादि साहित्य की सुगन्ध से सम्पन्न हो गया। विलासी कालिदास भी कविता कामिनीरूपा तुम्हारी कृपा से कवि कुलगुरु बन गया। मै भी तुम्हारे संयोगानुग्रह से अपूर्व आनन्द का अनुभव करता हूँ ॥५५ ॥

नवनवोन्मेषिणी—

कामं न स्यात् सजलजलदैरम्बरे मेदुरत्वम्,
नो वा भूयात् हरितवसना मेदिनी नीरवृष्ट्या।
स्रोतस्विन्यो विपुलपयसा पूरिताः सन्तु नो वा,
सृष्टिस्ते नो तदपि भजते क्वापि दुर्भिक्षवीक्षाम् ॥५६ ॥

हे भारति ! दुर्भिक्ष के कारण चाहे यह भौतिक आकाश सजल मेघो से घनीभूत न हो, चाहे यह मेदिनी जलवृष्टि से हरी-भरी न भी बने। चाहे ये सरिताएं सलिल प्रवाह से शून्य हो जाए, तो भी तुम्हारी सृष्टि पर दुर्भिक्ष कभी अपनी कुदृष्टि नही डाल सकता ॥५६ ॥

कवितासंयोग सौख्यम्—

संयोगस्ते रसिकरसिके ! दुर्लभो दुर्भगानाम्,
दिष्ट्या जातो मम तु विषमे जीवने सुप्रभातम्।
एकान्तेऽपि प्रणयपुलके लोकसंघातमोदः,
संघातेऽपि प्रबलवलने भावये चैकलत्वम् ॥५७ ॥

हे भारति ! कवितारूपधारिणी, रसिक प्रिया तुम्हारा संयोग भाग्यहीनो को नही मिल पाता। मुझे सौभाग्य से ही अपने नीरस जीवन में तुम्हारा सयोग प्राप्त हुआ है। जिसके कारण प्रणय भरे एकान्त मे भी जनसन्दोह का सुख प्राप्त होता है एव प्रवल जन सम्मर्द मे भी एकान्त का आनन्द प्राप्त किया जा सकता है ॥५७ ॥

कल्पनाम्भोधिजाता मोहिनी—

प्रादुर्भूतां हृदयजलधेः कल्पनोत्तुंगवीचेः
नूनं मन्ये करधृतसुधापूर्णकुम्भां हि रम्भाम्।
लावण्यं ते लसति परितः शब्दब्रह्मोपलब्धम्,
दृष्ट्वा मुग्धो भवति मनुजो मोहिनीं मुग्धभावाम् ॥५८ ॥

जब हृदय सागर मे कल्पना की ऊँची लहरे उठती है तब तुम्हारा कवितारूप प्रादुर्भूत होता है। उस समय तुम हाथ मे अममृत कलश लिये लक्ष्मी-सी प्रतीत होती

हो। शब्द ब्रह्म से उपलब्ध तुम्हारा लावण्य चारो ओर फैल जाता है। तुम्हारे उस मोहिनी रूप को देखकर कौन सहृदय मुग्ध नहीं होगा ॥५८ ॥

प्रकत्याऽलंकृता तनुः—

पीयूषाब्धिस्नपनसुभगा ते तनुस्तन्वि ! रम्भे !
चन्द्रस्तेऽयं वसति वदने सोदरश्चापि दिष्ट्या।
वेणीबन्धं कलयति मुदा वासुकिश्चापि बन्धुः
सद्यो जाता कथयसि कथं नात्मनो भूति-भावम् ॥५९ ॥

हे रम्भे ! भारति ! तुम्हारा कविता विग्रह अमृत सागर मे नहाने के कारण बडा सुन्दर लगता है, सौभाग्य से तुम्हारा सहोदर चन्द्र भी तुम्हारे सौन्दर्य की वृद्धि के लिये मुख मण्डल पर निवास करता है। तुम्हारा वन्धु वासुकी भी तुम्हारी वेणी सजाने मे आनन्द का अनुभव करता है। परन्तु तुम सहसा इस कल्पना सागर से कैसे प्रकट होती हो इस विभूतिपूर्ण रहस्य को क्यो नही बतलाती ॥५९ ॥

नक्षत्राणां नभसि ललिता राजते कण्ठमाला
चन्द्रो वक्त्रं विमलसुधया लेपलालयितोऽस्ति।
विद्युद्दीप्ते जलदसदने ते विलासाभिलाषा
किं वा काम्या विततविभवे कौमुदीहर्म्यगर्भे ॥६० ॥

हे कविता वनिता रूपे भारति ! देखो ये आकाश मे चमकते तारे तुम्हारे मनोहरकण्ठ का हार वनना चाहते है। यह चन्द्रमा तुम्हारे मुख पर सुधा लेप करने को लालायित रहता है। क्या तुम विद्युत् विभा से देदीप्यमान जलद सदन मे विहार करना चाहती हो ? कि वा इस वैभवपूर्ण चन्द्रिका के प्रासाद मे विहार की कामना है ? ॥६० ॥

पातुं सिद्धा अधरजसुधां ब्रह्मणः सोदरायाः
नादब्रह्म-प्रभवसुभगासंविदोऽमी रसज्ञाः।
यत्नेनाप्या क्वचिदपि मुदाऽयत्नतो भावयन्ती
प्रीत्यैहि त्वं हृदयसदने मे हृषीकाप्यायनाय ॥६१ ॥

रसज्ञ लोग जानते हैं कि तुम शब्द ब्रह्म की सहोदरा हो, तुम्हे नादब्रह्म का अंश होने का सौभाग्य मिला है अतः वे तुम्हारे अधरामृत के लालायित रहते हैं। कभी तुम अनायास ही उन्हे सुलभ हो जाती हो तो कभी प्रयत्न करने पर भी तुम पास मे नही फटकती। हे सुभगे! मेरी कामना है कि तुम मेरी तृषित इन्द्रियो को तृप्त करने के लिये मेरे हृदय मे सदा प्रेम से आया करो ॥६१ ॥

कविता सङ्गजाः मुदः —

अयि सुधाकर चारुमुखि ! प्रिये !
कुमुदिनी-कुल-कौशल-कर्षिणि !।
कुवलयेष्वपि कल्पितकेलिके !
कथमये कलितस्तव सङ्गमः ॥६२ ॥

हे सुधाकर चारु वदने ! कविताविग्रहे ! प्रिये भारति ! कुमुदिनी कुल का कौशल चुराने वाली, कुवलयो के साथ भी केलिएं करने वाली तुम मेरे पास कैसे आ गई? यह मैं नही जान पा रहा हूँ ॥६२ ॥

उपचिताऽस्युषयापि वसोभरैः,
निबिड़या निशयापि विभाविता।
चतुरचन्द्रिकयापि सुचर्चिता,
कुटिलघूककुलेऽपि च कीर्तिता ॥६३ ॥

उषा भी तुम्हे वस्त्रों से सजाती है, तो अन्धेरी राते भी तुम्हारा सम्मान करती है, यह चतुर चादनी भी तुम्हारी चर्चा किये बिना नही रहती तो कुटिल उलूक भी तुम्हारे गीत गाने मे पीछे नही है ॥६३ ॥

भणति भास्कर-भाऽपि तव प्रभाम्,
वियदिदं विकलं विरहेऽस्ति ते।
अतुलवैभवभूषित-विग्रहा,
भवसि भाग्यवतो भणिताश्रया ॥६४ ॥

सूर्य की प्रभा भी तुम्हारी तेजस्विता का स्मरण करती है, यह आकाश भी तुम्हारे विरह में व्याकुल प्रतीत होता है। तुम्हारा दिव्य विग्रह अतुल वैभव से सम्पन्न है। किसी भाग्यशाली को ही तुम्हारी वाणी का आश्रय प्राप्त होता है ॥६४ ॥

वितरितं किल काक-कलेवरे,
पिककुलेऽपि यशःस्वरमण्डनम्।
परभृतापि कृता खगगर्विता,
त्विति तवैव मता पटुता परा ॥६५ ॥

यह तुम्हारी ही चतुरता है कि तुमने जैसा यश कोयल की मधुर वाणी को प्रदान किया वैसा कौओं के काले कलेवर को भी दे डाला। दूसरों की गोद में अपनी सन्तान पलवाने वाली कोयल को तो तुमने पक्षियों में अभिमान करने वाला बना दिया यह तुम्हारी चतुराई है ॥६५ ॥

विरहितोऽवयवैरपि देहिनाम्,
मदन एष मदोन्मदमानसः।
हरति चोग्रतपो हि तपस्विनाम्,
तव कृपाफलितं हि विभाव्यते ॥६६ ॥

आश्चर्य है कि यह विना अगे के अनग भी मदन कहलाता है जो मदमत्त वना बेचारे तपस्वियो का तपो भग करता रहता है। यह तुम्हारी कृपा का ही फल है। ।६६ ॥

विगलिता लतिकापि विलासिनी
भवति पादपवेष्टन-पण्डिता।
कुसुमिता हसितेन विमोहिनी
भजति दिव्य-तरोर्ललनापदम् ॥६७ ॥

हे कविते ! तुमने दुवली-पतली लता को विलासिनी नायिका बनाकर पादप से लिपटने का कौशल दे दिया। जब वह पुष्पवती बनी तो उसे अपनी हसी मे मोहित करने वाली तरुवर की ललना बना दिया ॥६७ ॥

वितरिता कलहंसकुले खगे
गजगणे वनवासिनि पीवरे।
गतिविनोदन-गौरवभावना,
सुमुखिमन्थरसञ्चरणश्रियः ॥६८ ॥

हे कविते भारति ! बडा आश्चर्य है कि सुन्दरियो की मतवाली चाल की शोभा के साथ जुडी हुई गौरवशाली भावना को तूंने हंस जैसे पक्षी एव वन मे विचरण करने वाले हाथी जैसे जानवर के साथ जोड दिया ॥६८ ॥

नभसि सञ्चरतो जलदागमे
गिरितटे ह्युजटे नगरे वने।
जलधरान् करणैर्विधुरानहो!
कृतवती प्रियदूतपदे विदाम् ॥६९ ॥

आश्चर्य की बात है कि, वर्षाकाल मे आकाश मे पर्वत, वन, नगर, कुटीरो मे विचरण करने वाले इन्द्रियहीन मेघो को बुद्धिमानो का सन्देश पहुंचाने वाले दूत का पद प्रदान कर दिया ॥६९ ॥

विमथने महतो लवणाम्बुधेः
दितिसुता अमरा विनियोजिताः।
अति विचित्रमिदं लवणादहो,
मधुरताभरिता च सुधोद्धता ॥७० ॥

हे भारति ! तुम्हारी विचित्रता का भी क्या कहना, इनने विशाल लवण सागर का मथन करने के लिये दैत्यो और देवो को लगा दिया और उस खारे सागर से मधुर सुधा निकाल दी ॥७० ॥

लवणवारिधिलब्धकलेवरः
क्षयगदाकुलितो धृतलांछनः।
जनवशीकरणे ललनानन-
श्रियमहो भजते मधुरां शशी ॥७१ ॥

हे भारति ! तुम्हारे कला कौशल का क्या कहे- यह लवणाब्धि से जन्मा, क्षयरोग से पीडित, कलकी चन्द्रमा, इस ससार मे लोगो को वश मे करने के लिये सुन्दरियो के सुन्दर मुख की शोभा धारण किये बैठा है ।।७१ ।।

जनयति परां प्रीतिं चित्ते त्वदीयनवं नवम्
रसिक-रमणं चारु स्निग्धं कलाकुलमण्डितम् ।
नव रससुधासिक्तं गात्रं रुचा समलंकृतम्
अभिनवपदास्पन्दानन्दं कवीन्द्रसुखावहम् ।।७२ ।।

हे भारति ! रसिको के हृदय मे रमण करने वाला स्नेह स्निग्ध, विविध कलाकृतियो से मण्डित, नवविध रसामृत से ससिक्त, दिव्यकान्ति से समलकृत कविजन सुखावह अभिनव पदस्पन्दन से अपूर्व आनन्द प्रदान करने वाला, नित्य अभिनव प्रतीति प्रदान कुशल यह तुम्हारा कविता कलेवर हमारे हृदय को अपूर्व आनन्द प्रदान करता है ।।७२ ।।

ऋतुसंहारकारिणी—

फलानां वृक्षाणां कुसुमलतिकानाञ्च निलये,
ऋतूनां संहारो व्रजति विलयं कालवलये ।
परन्ते रम्येऽस्मिन् विविधविटपे नन्दनवने,
ऋतूनां संघातो लसति सततं मोदजनकम् ।।७३ ।।

विविध वृक्षो, फलो, लताओ एव पुष्पो मे निवास करने वाली, समय-समय पर उदित होती ऋतुए इस कालचक्र मे विलीन हो जाती है परन्तु हे भारति ! तुम्हारे इस वृक्षावली मण्डित नन्दन वन मे समस्त ऋतुए एक साथ प्रमोद प्रदान करती रहती है ।।७३ ।।

हेमन्तहर्षो हरिणेक्षणानाम्,
शीताभिलाषा शयनोत्सुकानाम् ।
वसन्तलिप्सा स्मरकिंकराणम्,
कालावसाने विलयं प्रयान्ति ।।७३ ।।

मृगनयनाओं का हेमन्त जनित हर्ष शीतकाल में शय्या में लिपटने की उत्कण्ठा, कामी जनों की वसन्त की प्रतीक्षा, समय बीतने पर अस्त हो जाती है ॥७४॥

ग्रीष्मर्तुहृद्यः सलिलावगाहः
प्रावृट्प्रवाहेऽस्तमितः प्रजायते ।
वर्षाप्रमत्ता जलदाश्च काले
शरदृतोः संकुचिता भवन्ति ॥७५ ॥

ग्रीषा ऋतु मे प्रिय लगने वाला जल स्नान, वर्षा ऋतु के आगमन पर ठडा पड जाना है। वर्षा ऋतु के मतवाले बादल शरद् के आगमन पर सकुचित हो जाते है ॥७५ ॥

धर्मोद्भूता वपुषि मृदुले स्वेदरवेदानुभूतिः
स्नानागारे शिशिरसमये लीयते कोमलाङ्ग्याः ।
मेघाः श्यामा वियति वितते प्रावृषि प्रीतिभाजः
याते काले विविधयतितेऽप्युन्मुखा नो भवन्ति ॥७६ ॥

सारी प्राकृतिक घटनाए काल के सीमा मे बन्धी रहती है ग्रीष्म ऋतु मे कोमलाङ्गी की ग्रीष्म जनित स्वेद व्यथा शीतल जल के स्नान से शान्त हो जाती है। वर्षा मे आकाश मे उमडने वाले काले बादल बड़े अच्छे लगते है ये सारी ऋतु जनित घटनाए समय बीतने पर प्रयत्न करने पर भी प्राप्त नही होती ॥७६ ॥

त्वत्साम्राज्ये प्रकृतिसुषमा सर्वदा यौवनाढ्या,
नो तद् भावाः प्रचुरसुखदाः कालचक्रावमृष्याः ।
हीयन्ते नो सुभगतटिनी-नीरवाहे विलासाः
नो वा मान्द्यं भजति विपिने कोकिलाकेकिनादः ॥७७ ॥

हे भारति ! परन्तु तुम्हारे साम्राज्य मे प्रकृति की सुषमा सदा यौवन भरी रहती है ! उनके अमित आनन्द प्रदान करने वाले भाव कालचक्र की चपेट मे नही आते । तुम्हारी नदियो के सुन्दर प्रवाह की उमगो मे कोई कमी नही दिखाई पडती न ही तुम्हारे वन-उपवनो मे कोयल और मयूरो की मधुर ध्वनिया ही मन्द पडती है । ।७७ ॥

निशाकरोऽयं गगनाधिरूढो
धरातलस्यैव तमोऽपहन्ति ।
त्वद्वर्णकान्तिस्तु धियोऽपि गाढम्
तमोऽपहर्तुं वहति प्रभुत्वम् ॥७८ ॥

हे भारति ! गगनविहारी यह चन्द्रमा तो समय-समय पर ही पृथ्वी का अंधकार दूर करता है परन्तु तुम्हारी वर्ण कान्ति तो मनुष्यों की मेधा में व्याप्त घोर अन्धकार को भी मिटाने का सामर्थ्य रखती है ॥७८ ॥

ज्ञानोदधेर्वैलक्षण्यम्—

ज्ञानोदधिस्तव शिवे ! गरलामृताङ्को
मृत्युञ्जयो भवति यद् गरलग्रहेऽपि ।
पीयूषपानरसिकास्त्वमृतत्वभाजः
स्वर्गे रमन्ति मुदिताः सह चाप्सरोभिः ॥७९ ॥

हे भारति ! तेरे ज्ञान सागर में विष और अमृत दोनों विराजमान हैं । विषपान करने वाला भी मृत्युञ्जय हो जाता है और जो अमृतपान करते हैं वे देवता बनकर स्वर्ग में अप्सराओं के साथ आनन्द भोगते हैं ॥७९ ॥

धूमोऽपि प्रदूषणहरः—

पीत्वा स्नेहसुधां जहार तिमिरं यावद् गृहाणां पुरा,
स्निग्धा दीपशिखा सुतेव शिखिनः क्रोडे कुटीनां गता ।
यज्ञीयश्च हुताशनो द्विजवरैः सन्तर्पितः सर्पिषा,
तावन्नो भुवने प्रदूषणमहारक्षो विविन्दाऽस्पदम् ॥८० ॥

हे भारति ! जब तक यह स्नेह स्निग्धा दीपशिखा घरों का अन्धकार मिटाती रही, तथा अग्नि की प्रियपुत्री की तरह मुनियों की कुटियों की गोद में खेलती रही एवं द्विजवर अग्नि को घृत में तृप्त करते रहे तब तक इस प्रदूषण महाराक्षस को इस धरती पर पाँव रखने की हिम्मत न हुई ॥८० ॥

मन्ये व्यूढं कलिहितकृते नव्यलीलायितं ते—

यन्त्रारूढा-कलयसि नवां भौतिकीं सृष्टिमद्य,
गेहे गेहे सुलभमखिलं साधनं भोगभूतेः।
विश्वं सर्वं नटति सदने यन्त्रितं यन्त्रतन्त्रे
मन्ये व्यूढं कलिहितकृते नव्यलीलायितं ते ॥८१ ॥

हे भारति ! तुम ही आज यन्त्रो के माध्यम से नये-नये भौतिक आविष्कारो की सृष्टि कर रही हो। घर-घर मे तुमने ही लोगो को आधुनिक भौतिक सुख साधन उपलब्ध करवाये हैं। तुम्हारी कृपा से आज घर मे ही यन्त्रो के माध्यम से सारा ससार अभिनय करता-सा प्रतीत होता है। ऐसा लगताहै मानो तुम कलियुग के हितार्थ ही ये नई लीलाए दिखा रही हो ॥८१ ॥

विद्युद्दीपो हरति तिमिरं तैलहीनोऽपि भासा,
दृष्ट्वैतत् वै रजनिरमणो जायते मन्दमूर्तिः।
वह्वेर्वीर्यं लयमुपगतं पाकशालाङ्गणेऽपि,
नेत्रव्याधिं कमलनयनानां न धूमो विधत्ते ॥८२ ॥

आज विना तेल के ही विद्युद्दीपक घरो का अन्धकार मिटा रहे हैं उन्हे देखकर चन्द्रमा भी फीका पड जाता है। तुम्हारी इस अभिनव माया से पाकशाला के अग्नि की शक्ति भी लुप्त हो गई है। जिसके कारण ये पद्मनयनाए भी उस काष्ठ करीष धूम्र की पीडा से मुक्त हैं ॥८२ ॥

गेहे नीरं प्रचुरमधुना प्रापयत्यम्बुनाली,
स्नानागारे सुलभपयसा निर्झरस्नानसौख्यम्।
शीर्षेकुम्भाः कुचभरनताः कूपभाग्ये न भामाः
शुष्का रम्याः स्नपनविरहे कामिनीनां तडागाः ॥८३ ॥

आज प्रत्येक घर मे जलनलिकाए प्रचुरमात्रा मे नीर पहुचा रही है स्नानघर मे निर्झर सुख प्राप्त हो रहा है। अव उन बेचारे कूपो के लिये तो सिर पर घडा उठाएं, स्तनभार से झुकी, सुन्दरियो का दर्शन भी दुर्लभ हो गया है। अव तो वे तडाग भी उन रमणियो की जलक्रीडा के वियोग मे सूख गये है ॥८३ ॥

अस्तं याता शकटशकटीगन्त्रिका मन्दगत्यः
मार्गे धावन्त्यनिलगतिका यन्त्रसिद्धाः शकट्यः।
आकाशेऽपि ध्वनिगतियुतं वायुयानौघमद्य,
पन्थानोऽपि प्रबलचितयः कर्दमाक्रान्तिशून्याः ॥८४॥

तुम्हारी इस नई भौतिक माया के कारण धीरे-धीरे चलने वाली घोडा-गाडिया और बैलगाडियॉ अब मन्द पड गई है। अब यन्त्र शकटिकाए ही चारो ओर तीव्र गति से भाग रही है। आकाश मे ध्वनि से तीव्रगति वाले विमान चल रहे है। मार्ग भी पक विहीन और पक्के बन गये है ॥८४॥

कालो होरा-निमिष-घटिका-सेवकः खेचराणाम्
पाणौ बद्धो दिशति समयं यन्त्रघट्यासनस्थः।
दासीभूतो चरति पवनः पाणिसंकेतितेन,
शीतोष्णत्वं हुतवहकृते कल्पितं यन्त्रबद्धम् ॥८५॥

तुम्हारी इस नई लीला ने काल को भी कलाई मे बाध रखा है। काल भी यत्र घटिका मे सेवक बना घटा मिनिट और सैकण्ड गिन रहा है। काम चारी पवन भी हाथ के सकेत पर चलने वाला दास बन गया है। हविष्यान्न भक्षण करने वाला पावक भी यन्त्र मे बन्दी बना हमारी इच्छा के अनुसार उष्णता और शीतलता प्रदान करता है ॥८५॥

यन्नो साध्यं भवति सहसा मन्त्रसिद्ध्या प्रकामम्
तद् वै सर्वं चकितमभितः कल्पितं यन्त्रशक्त्या
दृप्तो लोको भणति धिषणा-भावितं सर्वमेतत्
नो जानीते सकलमपि तत् तेऽस्ति लीलायितं सः ॥८६॥

जिस कार्य को मन्त्र शक्ति नही कर सकती उसे तुमने यन्त्र शक्ति द्वारा आश्चर्यजनक ढग से कर दिखाया है। चाहे लोग इस सब भौतिक उपलब्धियो के लिये अपने बुद्धिबल पर गर्व करते हो परन्तु यह सब तुम्हारी ही लीला है इसे वे नही जान पाते ॥८६॥

चिकित्सा वैचित्र्यं चकितमिव पश्यन्ति भिषजः,
ऋते शल्यं वेघो भवति करणानां द्युतिकरैः।
विनागर्भाधानं कृतकनलिकायां शिशुभवः,
समानां जीवानां पिशितशकलेनैव घटना ॥८७॥

चिकित्सा पद्धति भी बडी विचित्र हो गई है । विना शल्य के ही, प्रकाश किरणो मे ही शल्य चिकित्सा हो जाती है । गर्भाधान के बिना ही कृत्रिम नलिका मे शिशु का पोषण हो जाता है । यही नही प्राणियो के मास शकल से ही तदाकार प्राणी का निर्माण हो जाता है ॥८७॥

गताऽपेक्षा मश्याः कलयति न केलिञ्च कठिनी
क्षणेन ग्रन्थानां भवति सुभगं मुद्रमणहो।
नवः शब्दो बोधः जनित इह संगणकजः
ह्यनस्तं यन्त्राङ्के लसति सकलं वाङ्मयमपि ॥८८॥

अब स्याही कलम की आवश्यकता भी मिट गई है क्षण भर मे यन्त्र से ग्रन्थ का मुद्रण हो जाता है । जिस शब्द ज्ञान को जनसमूह नही कर पाता वह सगणक के द्वारा तत्काल हो जाता है ॥८८॥

अणुः ख्यातिं नीतः कलिपमुनिना सांख्यविदुषा
स वै यन्त्रारुढः प्रलयमलमद्यास्ति विहितुम्।
यदीयस्फोटेनाऽखिलमपि च विश्वं धृतभयम्
असाध्यं यत्कार्यं भवति लघुसाध्यं ह्यणुवताम् ॥८९॥

साख्य शास्त्र के विद्वान् कपिल मुनि ने जिस अणु का अन्वेषण किया वह अणु आज यन्त्रारूढ होकर प्रलय करने मे समर्थ हो गया है । जिसके विस्फोट से आज सारा विश्व भयभीत है । अणु शस्त्रधारी राष्ट्र के लिये असाध्य कार्य भी अयत्न सिद्ध हो जाते है ॥८९॥

यन्त्रस्थं विपुलं हि वीर्यमधुना संलक्ष्यते भूतले
तत्सर्वं तव भारति! प्रियदृशां लीलाविलासाश्रितम्।
अस्पृश्यं दिवि भासमानममृतांशोर्मण्डलं दैवतम्
जातं मानवपादधूलिविकलं मन्ये तवैव श्रिया ॥९० ॥

हे भारति! आज के युग मे जो यन्त्रगत बल दिखाई पड रहा है वह सब तुम्हारी प्रियदृष्टि और लीला पर ही निर्भर है। अतिदूर आकाश मे देदीप्यमान जो चन्द्रमण्डल मनुष्य की पहुच से बाहर माना जाता था वह आज मानव की चरणरज से मलिन हो रहा है ॥९० ॥

आश्चर्योदयकारकायुधयुगे यन्त्रप्रभावोदिते
मृत्योरप्यवधारणा न कठिना दूराद् रिपूणामिह।
दृक्सञ्चालनमात्रतोऽद्य जलधेः पारं व्रजत्यायुधम्
साकेतस्थित एव रावणवधं कर्तुं प्रभू राघवः ॥९१ ॥

यन्त्रों के कारण आधुनिक शस्त्र युद्ध भी आश्चर्यजनक हो गया है। दूर बैठेही शत्रु को मृत्यु के घाट पहुचाया जा सकता है। अब तो निमिषमात्र मे शस्त्र समुद्र के पार पहुच जाता है। आज राम अयोध्या मे बैठे ही लका के रावण का वध कर सकता है ॥९१ ॥

काष्ठापेक्षितसंभवो हुतवहो नो मान्यते साम्प्रतम्
चुलीधूमसमाकुला न ललनाः पाकालये नूतने।
ऊर्जायन्त्रसमागमे नवयुगे हर्षं गृहिण्यो गताः
मन्ये त्वं कलिभावनाय भुवने नूत्नावतारा वृता ॥९२ ॥

अब अग्नि के लिये काष्ठखण्डो की आवश्यकता नही लगती। अब पाकशाला मे गृहिणिए चूल्हे के धूए से व्याकुल नही होती। गृहिणी अब गैस यन्त्र आने से बहुत प्रसन्न है। ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो तुमने कलियुग को प्रसन्न करने के लिये नया रूप धारण कर लिया है ॥९२ ॥

यन्त्राणां सहयोगजेन विधिना ह्यभ्रंकशाश्चालयाः,
सौधारोहणसाधनेऽपि सुलभा निश्रेणिका यान्त्रिकी।
धत्ते मृत्कणिकापि मेरुगुरुतां लध्वीशिलाशैलताम्
मालिन्यं हरते च फेनिलगुटी लुप्ताः सुधामृत्त्विषः ॥९३॥

यन्त्रो के सहयोग से आकाश मे गृह निर्माण की योजना वन रही है। मिन्न मीढी के ऊचे महलो पर यान्त्रिक साधनो से क्षण भर मे पहुचा जा सकता है। छोटा छोटा मिट्टी का कण मेरु वन जाता है छोटी शिला पहाड बन जाती है। आज छोटे साबुन की टिकिया ही मैल मिटा देती है। अब मिट्टी और चूने का खेल समाप्त हो गया ॥९३॥

पूर्वं प्रेयसिविप्रयोगविकला दूरे स्थितास्तापसाः
सन्देशं जलदैर्जडैः प्रियतमां मुग्धा इव प्रापयन्।
सम्प्रत्यम्बुधिपारगोऽपि निमिषैर्वार्तां विधातुं क्षमः
कामिन्योऽपि च कक्षगाः प्रियजनं दृष्टुं क्षमाः दूरगम् ॥९४॥

पहिले दूर बैठा वियोगी बेचारा इन जड मेघो के द्वारा अपनी प्रेयसी को सन्देश भेजने का पागलपन दिखाया करता था। अब तो समुद्र पार बैठा व्यक्ति क्षणभर मे अपने प्रियजनो से बात कर सकता है। कामिनिए अपने कक्ष मे बैठी-बैठी दूरस्थ अपने प्रियजन के दर्शन तक कर सकती है ॥९४॥

कालेऽभीष्टफलप्रदाश्च तरवः कल्पद्रुमाः संवृताः
वल्लर्यो विटपीभवन्ति विटपो धत्ते लतारूपताम्।
दृष्ट्वेदं फलशाकरागरसने चित्रं परावर्तनम्,
जायन्ते खलु मूर्छिता अपि भृशं संज्ञाजुषोमण्डपाः ॥९५॥

अपने समय पर ही फल देने वाले वृक्ष भी कल्पवृक्ष के समान जब चाहे फल दे देते है। लताएं वृक्ष बन जाती है वृक्ष लता का रूप धारण कर सकते है। इस यन्त्र युग मे फल, शाक के रूप रंग और स्वाद मे विचित्र परिवर्तन देखकर ये मुर्झाये हुए लता कुञ्ज भी होश मे आ जाते है ॥९५॥

नाट्यं नृत्ययुतं सकेलिभवनं सानङ्गतन्त्रं प्रियम्
संगीताभिनयान्वितं च मुकुरे यन्त्रार्पितं भासते।
बिम्बस्थाः सकलाश्च शास्त्रगिरयो रश्मिक्रमे चूर्णिताः
जायन्ते नवचेतना द्रुततरं संस्पर्श-संकेतितैः ॥९६ ॥

आज तो घर मे ही यन्त्र के दर्पण मे, सारे मनोरञ्जन के साधन, नृत्य, कामक्रीडा युक्त केलिगृह मगीत, और अभिनय सहित नाटक, प्रत्यक्ष दिखाई पडते हैं। आज तो सारे शास्त्रों की वाणी को यन्त्रो के माध्यम से सीडी डिस्क मे किरण रूप मे स्थापित कर दिया है जो सकेतमात्र से नई चेतना पाकर उपस्थित हो जाते हैं। ।९६ ॥

भौतिकेऽपि त्वमेवाद्या—

गताऽग्निहोत्रस्यकथा नु कामम्
युगप्रवृत्तेः परिणाम-सिद्ध्यै।
परं त्वया तस्य पदेऽस्ति भौतिकी
मायार्पिता विश्वविमोहिनीयम् ॥९७ ॥

युग परिवर्तन के कारण, पूर्वकाल मे जनकामनाओ की पूर्ति करने वाले अग्निहोत्र की बाते चाहे आज लुप्त-सी हो गई हो, परन्तु तुमने इस युग मे ऐसी भौतिक-माया फैलाई है कि आज सारा ससार इस पर मुग्ध हो गया है ॥९७ ॥

समागते मन्त्रपदेऽद्य यन्त्रम्—

अस्तं गतः पिण्डगतप्रभावो,
मन्त्रोदितो दिव्यविचित्रवीर्यः।
यन्त्रागमोऽयं तव भारतीह,
ब्रह्माण्डमध्येऽस्ति ततोऽपि भूयान् ॥९८ ॥

इस समय मन्त्रो के द्वारा शरीर पर होने वाला दिव्य प्रभाव तो अस्त हो गया है परन्तु तुम्हारी माया मे उदित यन्त्रो से आज सारा ससार अवश्य प्रभावित है ॥९८ ॥

करने के लिये अपनी प्राणप्रिया पत्नी तक का त्याग कर दिया ऐसे त्याग को वे महिला का अपमान घोषित कर रहे है ॥१४७ ॥

यज्ञोद्भवा पुण्यवती सती या
देवांशजान् पञ्चवरान् प्रपेदे ।
क्षिपन्ति हा वज्रधियोऽद्य मन्दाः
तस्याः सतीत्वेऽपि तु पंकमेते ॥१४८ ॥

यज्ञ से उत्पन्न हुई पवित्र सती द्रौपदी, जिसने तपस्या के द्वारा पाच देवाश वरो को मागा उसके सतीत्व पर ये वज्र मूर्ख आज कीचड उछाल रहे है ॥१४८ ॥

शारदाऽप्यस्ति मुग्धा—

अहो ! वीणापाणिर्विमलवसना कुन्दधवला,
मरालं त्यक्त्वैषा भजति बकमेकालकलितम् ।
फिरंगीफेरूणां कपटधृतरागस्य वशगा
सरस्वत्या मेधाहरिमपि न हा संकलयते ॥१४९ ॥

हे भारति ! आश्चर्य तो इस बात का है कि यह विमल वसना, कुन्दधवला विद्या की अधिष्ठात्री शारदा भी नीरक्षीर विवेकी हंस वाहन को छोडक मेकाले बगुले की राह पर चल रही है । इन फिरगी गीदडो के वनावटी रग पर मोहित हुई सी सरस्वती की बुद्धि भी अपना गणित इन गोरो की पद्धति से कर रही है । वह सिह की पहिचान ही मानो भूल गई है ॥१४९ ॥

कुलाङ्गनापि गतत्रपा—

त्रपा भूषा यासां कुलवर-वधूनामभिमता
मताऽसूर्यपश्या नृपकुलमहिष्यश्च भुवि याः ।
अहो ! तासां व्रीडा विलयमुपयाताऽद्य सहसा
चरन्त्यो नग्नार्धाः कथमपि न ते वेदनकराः ॥१५० ॥

जो कुलाङ्गनाए लज्जा को अपना भूषण समझती थी जो राजकुल की महीषिएं

खुले मुह सूर्य भी नही देखती थीं, वे आज लज्जा को तिलाञ्जलि देकर अर्ध नग्नावस्था मे घूम रही है। हे भारति। यह देखकर क्या तुम्हे पीडा नही होती ॥१५० ॥

राज्यश्रीरपि व्याकृता—

राज्यश्रीर्वसुलोकपालतनुजस्यौजस्विनो भूपतेः
वश्या धर्मधुरीणरक्षणपरा वर्णाश्रमोद्धारिणी।
चक्रे शास्त्रपथावलम्बनमियं राष्ट्रे त्वया प्रेरिता
येनेदं खलु भारतं स्व गुरुतां भेजे जगत्यां पुरा ॥१५१ ॥

हे भारति ! वह भी समय था जब राजलक्ष्मी भी आठ लोकपालो के अशज ओजस्वी राजा के वशीभूत रहती थी और वर्णाश्रम व्यवस्था की रक्षा करती थी और वे राजा भी शास्त्रो के नियमानुसार प्रजारञ्जन करते हुए शासन करते थे। जिसके कारण भारत संसार मे अपना गौरवपूर्ण स्थान रखता था ॥१५१ ॥

शास्त्राणां परिपालिनी त्वमसि सा सैवास्तिपुण्या मही
किं जातं सहसा तवैव पुरतस्तन्त्रं पुराणं हतम्।
जातैषा नवलोकतन्त्रविवशा धर्मानपेक्षेक्षणा
राज्यश्रीः परसूत्रचालितगतिः पाञ्चालिका भारति ! ॥१५२ ॥

हे भारति ! यद्यपि शास्त्रो की रक्षा करने वाली तुम भी वही हो, यह भूमि भी वही है, फिर भी यह सहसा क्या हो गया ? जिससे सारा पुरातन तन्त्र तुम्हारे देखते-देखते अस्त हो गया। यह राजलक्ष्मी भी इस नये लोकतन्त्र के वशीभूत होकर धर्म के विमुख हो गई और आज कठपुतली की तरह विदेशी सूत्रो के सकेत पर चल रही है ॥१५२ ॥

राज्यश्रीपरिरम्भणोत्सुकधियां तन्त्रेऽपि तारस्वरा,
लोकानां मतलम्भनाय लुलिता नानादलोद्भाविनी।
राष्ट्रे भक्तिजुषामपि भृशं दोषान् मृषादर्शिनी
मेधापाटवपालिनी कथमये जातासि विप्लाविनी ॥१५३ ॥

इस नये लोकतन्त्र मे भी ऊंचे स्वर से राजनैतिक साहस प्रकट कर रही हो जो

प्रवल राष्ट्र भक्त है उनमे भी दोष दिखा रही हो। न जाने आज क्यो अपनी बुद्धि का कौशल दिखाने, जनता मे विप्लव भडकाने की उछल कूद कर रही हो ॥१५३॥

कर्तुं साक्षरताप्रसारमधुना ग्रामे कुटीरे मठे,
प्रेर्यन्ते खलु बालवृद्धतरुणाः शिक्षार्थमेवाऽभितः।
पश्यामोऽपि च पत्तनेषु विपुलान् विद्याधरान् दुर्भगान्
तातानामनुतापपापजनकान् जातानिमान् राक्षसान् ॥१५४॥

एक ओर गावो मे झोपडियो मे और मठो मे साक्षरता का प्रचार करती हुई आवाल वृद्धो को शिक्षा के लिये प्रेरित कर रही हो वही दूसरी ओर नगरो मे वडे-वड़े साक्षर विद्याधर राक्षस वनते जा रहे है जिनके पिता उन्हे पढाकर पछता रहे है ॥१५४॥

यन्त्रोदिताविकृतिः—

विश्वं सर्वमिदं तवाक्षर-शशि-ज्योत्स्नासुधाप्लावितम्,
लोकानाञ्च हिताय दैविकपदं भूतेषु चाप्याहितम्।
सिद्धा त्वं खलु मातृका तव गुणैः सर्वं जगद् गुम्फितम्
चित्रं तत्तव वैभवं कथमये यन्त्रोदये क्षीयते ॥१५५॥

हे भारति ! यह सारा ससार तुम्हारे अक्षर चन्द्र की ज्योत्स्ना सुधा से आप्लावित है। तुमने लोक-कल्याण के लिये भौतिक तत्वों मे भी देवत्व का निधान किया है। आप तो सिद्ध मातृका है आपके सूत्रो से सारा ससार गूथा हुआ है फिर भी आश्चर्य है कि इस यन्त्रयुग मे आपका वैभव क्यो क्षीण होता हुआ दिखाई दे रहा है ॥१५५॥

शिष्टं यद् गणितं हि वारवनितावंशे पुरा सूरिभिः,
प्राप्तं तत्कुलकामिनीकुल इदं भूषामिषेणाधुना।
देहालंकरणं विलासलसितं जातं युगोद्बोधनम्,
स्वच्छन्दे वनिताकुले विगलितं लज्जामिधं भूषणम् ॥१५६॥

जो वेषभूषा पूर्वकाल मे वारवनिताओ के योग्य मानी जाती थी वह आज कुलीन नारियो का शृगार बन गई है। आज विलास व्यञ्जक देहालंकरण युग का

परिचायक हो गया है। आज वनितावृन्द के स्वच्छन्द हो जाने के कारण लज्जा का भूषण भी लुप्त हो गया है ॥१५६ ॥

शृङ्गारे रसभावनोदयकरे माधुर्यमापादितम्
काव्ये तद् गणितं रसज्ञविबुधैः प्रह्लादने कारणम्।
ब्रह्मानन्दसहोदरे रसकुले कादम्बरीमिश्रणम्
जातं भाण्डकृतैः प्रदूषणमिदं संवार्यतां शारदे ! ॥१५७ ॥

रसज्ञ विद्वानो ने शृंगार रस की भावना मे जो माधुर्य निर्दिष्ट किया है वह काव्य मे आनन्द का कारण माना गया है परन्तु इस युग ने उस ब्रह्मानन्द सहोदर रस मे आज भाण्डो की अश्लीलता का विष मिला दिया है। हे भारति ! इसे आप शीघ्र दूर कीजिये ॥१५७ ॥

वेदाः सन्ति त एव वर्णविभवाः सन्मुद्रिताः सस्वराः
नैषां किन्त्विह पाठका द्विजवरा लभ्याः सुखेनाधुना।
गीता भाष्ययुतापि चास्ति सुलभा ह्यस्मिन् महाभारते
पार्थाः ज्ञानपिपासवो नहि परं नो माधवाः बोधकाः ॥१५८ ॥

आज वर्ण वैभव धारी वेद भी वे ही है। सुन्दर अक्षरो मे मुद्रित उन वेदो के स्वर भी विद्यमान हैं परन्तु उनके पाठक द्विजवर अब सुलभ नही है। इस विशाल भारत मे भाष्ययुक्त गीता भी दुर्लभ नही है परन्तु ज्ञान के पिपासु अर्जुन और उसके बोधक कृष्ण सुलभ नही है ॥१५८ ॥

अस्तं याता श्रुतिसुखकरा वेदपाठाः द्विजानाम्,
संगीतश्रीः प्रकृतिसुखदा भण्डकण्ठाभिभूता।
पातिव्रत्यं सुरवशकरं लुप्तमद्याङ्गनानाम्,
नव्ये तन्त्रे भजति विपदं धर्मशास्त्रं मुनीनाम् ॥१५९ ॥

हे भारति ! इस नये शासनतन्त्र मे ऋषियो के धर्मशास्त्र संकट मे पड़ गये है। द्विजो का कर्णप्रिय वेदपाठ अस्त हो गया है। प्रकृति को प्रसन्न करने वाला शास्त्रीय संगीत नटो के कण्ठ मे कष्ट पा रहा है। देवताओ को वश मे करने वाला पतिव्रता धर्म नारियो मे लुप्त हो गया है ॥१५९ ॥

**पाराशर्यसमा विशिष्टपुरुषा अत्र त्वयोद्भाविताः,
येषां ज्ञानपयोधिजातसुधया सम्प्लावितं भूतलम्।
स्वं स्वं वर्णविधेयमात्मनुदितैश्चक्रुर्जनाः श्रद्धया
नो जाने कथमद्य भौतिकधियो जातास्ततोऽवाङ्मुखाः ॥१६० ॥**

हे भारति ! तुमने ही इस भूमि पर व्यास जैसे महापुरुषो को जन्म दिया जिनके ज्ञान सागर की सुधा से सारा ससार तृप्त होता था। सभी लोग आत्म प्रेरणा से श्रद्धापूर्वक वर्णाश्रम धर्म का पालन करते थे। न जाने आज क्या हो गया है कि उनकी ही सन्तान इस भौतिक प्रभाव के कारण उनसे विमुख हो गई है ॥१६० ॥

**ख्याता ब्रह्मकुलप्रियेति जगति ब्रह्मास्त्रवीर्यान्विता
गायत्री द्विजपुङ्गवैः श्रुतिमतैर्भक्त्या समाराधिता।
विश्वामित्रवसिष्ठशापकुपितेवाद्यातिरोषान्विता,
जाता हाऽन्त्यजवल्लभा पथिचरा शास्त्र प्रतीपाध्वगा ॥१६१ ॥**

जो गायत्री ससार मे ब्रह्मकुल मे प्रिय थी, जिसमे ब्रह्मास्त्र की प्रचण्ड शक्ति थी, जो वेदज्ञ विप्रो द्वारा भक्तिपूर्वक जपी जाती थी, वही आज विश्वामित्र और वसिष्ठ के पूर्व प्रदत्त शाप से मानो कुपित होकर अन्त्यज कुल मे अनुरक्त होकर मार्गो पर भटकती हुई शास्त्र विरुद्ध आचरण कर रही है ॥१६१ ॥

**शब्दब्रह्मसमुद्भवे ! नवनवोन्मेषप्रिये ! भारति !
नानावादविवादकारणकृतौ दाक्षिण्यसंदर्शिनि।
सिद्धा सौगतशून्यवादविषये जैनागमोद्भाविनि !
द्वैताद्वैतविशिष्टकेवलरसास्वादे क्वचिद् दक्षिणा ॥१६२ ॥**

हे शब्द ब्रह्म जाते ! आज तुम्हे नये-नये उन्मेष बहुत प्रिय लगते है। आज तुम विवादजनक नये-नये वादो को जगाने मे अपना कौशल दिखा रही हो। पहिले वेद विरुद्ध बौद्धो का शून्यवाद और जैनदर्शन मे अपना कौशल दिखाया फिर उसके खण्डनार्थ, अद्वैत, द्वैत, विशिष्टाद्वैत, केवलाद्वैत आदि दर्शनों का दाक्षिण्य दिखाया ॥१६२ ॥

दृष्टास्ते वरतन्तुतुल्यगुरवो विद्यावतां पुङ्गवाः
शिष्याः कौत्ससमा गुरोरभिमतां दातुंक्षमा दक्षिणाम्।
पश्यामः पणकिंकरानपि दृशा कालेऽधुना शिक्षकान्,
शिष्यांश्चापि गुरूद्धुरान् गुरुकुले पण्यस्थले भारति ! ॥१६३॥

हे भारति ! हमने तुम्हारी कृपा से वरतन्तु जैसे विद्वद्वर्य गुरु भी देखे, और कौत्स जैसे शिष्य भी देखे जिन्होने गुरु की आज्ञा मे विपुलदक्षिणाद्रव्य देकर अपना कर्त्तव्य निभाया। आज इन शुल्कदास गुरुओ को भी देख रहे है और अनुशासनहीन शिष्य भी, जिनके गुरुकुल, व्यापार की मडी बने हुए है ॥१६३॥

राष्ट्रे विश्वजिता रधूपमनृपाः ख्याता प्रतापान्विताः
ये चाखण्डभुवः प्ररक्षणपराश्चक्रुर्द्विषां निग्रहम्।
येषां वैश्रवणश्चकार भरितं कोषं हिरण्यैः स्वयम्
येनाखण्डलमण्डलेऽप्यधिगतं वीर्येण मानास्पदम् ॥१६४॥

इस राष्ट्र मे रघु जैसे प्रतापी राजा भी हुए जिसने सारे ससार पर विजय पाकर विश्वजित् यज्ञ द्वारा चक्रवर्ती सम्राट् की प्रसिद्धि प्राप्त की। जिसने इस देश की अखण्डता की रक्षा करते हुए शत्रुओ का दमन किया। जिसके प्रताप से स्वय कुबेर ने उनका कोष स्वर्ण से भर दिया था तथा जिसे अपने शौर्य के कारण इन्द्र के राज्य मे भी सम्मान प्राप्त था ॥१६४॥

जाता भारति ! पुण्यभारतभुवो वन्ध्या दशा साम्प्रतम्
एनां खण्डितविग्रहां विदधिरे सम्पश्यतां नोऽरयः।
विस्मृत्यात्मकुलस्य गौरवकथां क्लैब्यं गता दैशिकाः
आतङ्काकुलितास्ति दस्युदनुजैरद्यावनी नः शिवा ॥१६५॥

हे भारति ! आज इस पवित्र भारत भूमि की क्या दशा हो गई है। शत्रुओ ने हमारे देखते-देखते इसे खण्डित कर दिया। दुर्भाग्य से आज इस देश के निवासी बुद्धिमान् भी अपने कुल का गौरव भूल कर नपुसक से हो गये है। आज हमारी सारी धरा आतताइयो के आतङ्क से त्रस्त है ॥१६५॥

परित्रातुं शीलं यवननिहते क्षत्रियकुले,
चितारूढानां नो कलयति सतीनां स्मृति कथा।
चिरण्टीनां चर्चा लगति रुचिरा लाघवकरी
दिशन्तीनां देहं चपलकलितं केलिभवने ॥१६६ ॥

आज यवनो द्वारा पतियो के मारे जाने पर अपने शील की रक्षा के लिये चिता मे अपने देह की आहुति देने वाली उन सतियो का स्मरण भी अच्छा नही लगता। आज तो अपनी हीनता दिखाने वाली उन चिरण्टियो की चर्चा होती है जो केलिगृह मे अपने देह की चञ्चलता का प्रदर्शन करती रहती है ॥१६६ ॥

महारथास्तेऽद्य कथावशेषा
वीर्यं हि येषां प्रथितं जगत्याम्।
मृगा मृगेन्द्रा इव वीभमानाः
दिशन्ति नित्यं प्लुतिपाटवं स्वम् ॥१६७ ॥

जिन महारथियो ने अपनी वीरता के कारण विश्व मे यश कमाया था वे तो आज कथावशेष मात्र है। परन्तु आज के हरिण थोडी-सी छलाग लगाकर शेरो-सी डीग हाकते रहते है ॥१६७ ॥

हर्म्याधिवासा खलु राजलक्ष्मी
रथ्याचरा हा परिलक्ष्यतेऽद्य।
वर्णव्यवस्था परिपोषिणी या
वर्णस्य सा संकरताप्रसारिणी ॥१६८ ॥

जो राजलक्ष्मी महलो मे रहती थी वह आज गलियो मे घूम रही है। जो वर्ण व्यवस्था का परिपालन करती थी वह वर्ण सकरता को प्रोत्साहित कर रही है। ।१६८ ॥

दुर्दैवानल ताप-तापित-तले जाते भृशं भूतले
दग्धे प्राणितपोषके च विभवे मातस्त्वयैवात्मनः।
सिक्तेयं धरणी प्रबुद्ध पुरुष-प्रज्ञोपदेशाम्बुदैः
शूरैर्भक्तजनैश्च पुण्यपुरुषैः सम्पादिता शाद्वला ॥१६९ ॥

हे भारति ! जब कभी यह भारत भूमि दुर्दैव दावाग्नि से अभितप्त हुई तथा उस ताप मे इस धरा का प्राणपोषक तत्त्व जलने लगा तब तुमने ही धरावतीर्ण महापुरुषो के उपदेश जलधरो मे इसे सींचा तथा इस वसुधा के वीर और विरक्त भक्तों ने उसे पुन: हरा-भरा कर दिया ॥१६९ ॥

कालस्योत्कटझंझया च विधुरे जाते दलैः पादपे
दुर्भिक्षेऽप्युदिते प्रबोधकणिकाऽभावे च विज्ञाऽवनौ ।
कृत्वा माधवमोदकोदयमये ! व्यापारितं सौरभम्
उद्यानं सुमसंभरेण कलितं विश्वप्रियं भारति ! ॥१७० ॥

जब काल की भीषण झञ्झा मे इस प्रज्ञावानो की पृथ्वी के विटप पत्रहीन हो गये और ज्ञान कणिका के अभाव मे इस अवनि पर अकाल छा गया तब तुमने ही विज्ञान वसन्त को जगाकर उसकी सौरभ का प्रसार किया तथा इस उजडे उद्यान को सुमनो मे सजाकर संसार का आकर्षण केन्द्र बनाया ॥१७० ॥

विकृति जनितो विषादः

किं हा ! वृतं साम्प्रतम्—

उच्छिष्टाशनदूषितामलधियो जाता बुधाः साम्प्रतम्
स्वीयं प्रोज्ज्वलवैभवं गुरुजनैः सम्भावितं निन्द्यते ।
वीर्यं स्वीयममोधमद्य च जडैः शूरै र्न संस्मर्यते
प्राज्ञा विश्वजनप्रकीर्तितगुणा मन्दाः हि मूढैर्मताः ॥१७१ ॥

परन्तु दुर्भाग्य से आज पुनः यहा के बुद्धिजीवियो की बुद्धि आज विदेशियो का उच्छिष्ट खाने से दूषित हो गई है जो अपने ही पूर्वजो द्वारा समादृत उज्ज्वल वैभव की निन्दा कर रहे है । वे जडमति अपने वीरो की अमोधशक्ति का स्मरण तक नही करते । जिन प्राज्ञ-पुरुषो की विश्व प्रशसा करते है उन्हे वे मूढ समझ रहे है ॥१७१ ॥

प्रसादात्ते ख्याता गुरुपदजुषो येऽग्रजवराः,
मुखोद्गीर्णं येषां गणितमनघं ब्रह्मभणितम् ।
वितस्थुर्यद्द्वारे विनतमुकुटाः पार्थिववराः
जगद्वन्द्यास्ते हा ! विकृतमतयः सम्प्रति वृताः ॥१७२ ॥

हे भारति ! तुम्हारी कृपा से जो अग्रजवर जगद्गुरु कहलाते थे जिनके मुख से निकले वचन ब्रह्मवाक्य माने जाते थे तथा जिनके द्वार पर पृथ्वीपति भी अपना सिर मुकुटविनत किये खडे रहते थे वे ही आज दुर्भाग्य मे विकृतमति हो गये है ।।१७२ ।।

श्रुतीनां द्रष्टारः स्मृतियमितलोकक्रमदिशः,
तपस्तेजो दृष्ट्वा प्रबलबलिनो वेपथुयुताः ।
बभूवुर्येषां ते भृगुकुलभवाः भूसुरपदाः
अये ! मातर् जाता गलिततपसो वीर्यविधुराः ।।१७३ ।।

जो ब्रह्मर्षि वेदमन्त्रो के दृष्टा माने जाते थे जिन्होंने स्मृति शास्त्रो द्वारा ससार को जीवनपथ प्रदर्शित किया था। जिनके तपोबल के आगे राजा भी प्रकम्पित हो जाते थे वे ही परशुराम के वंशज आज तपोबल विहीन दीन हो गये है ।।१७३ ।।

स्थितं ब्राह्मं तेजो शिरसि शिखिनामाप विमलम्
शिखामुक्तिर्येषां प्रलयजननी चापि विदिता ।
कुटीराग्रे येषां प्रणतशिरसो हर्म्यशिखराः
त एवाद्याऽदिष्ट्या निजहतिरताः सन्ति विशिखाः ।।१७४ ।।

जो ब्रह्मतेज, शिखाधारी ब्राह्मणो के शिखाबन्ध मे रहता था जिनकी शिखामुक्ति प्रलयकर मानी जाती थी। जिनकी कुटी के आगे प्रासादवासी राजा भी नतमस्तक खड़े रहते थे। वे ही विप्र आज शिखाहीन होकर अपनी मृत्यु के कारण बन रहे है ।।१७४ ।।

स्थिता यस्य ग्रन्थौ विधिहरिहराद्याः सुरगणाः,
प्रजापत्याश्लिष्टं द्विजजनतपोब्रह्म-जनकम् ।
पवित्रं यज्ञाद्यं प्रथितमुपवीतं द्विजतनौ ।
फिरङ्गीशिक्षाङ्के गणितमधुना सूत्रशकलम् ।।१७५ ।।

जिसकी ब्रह्मग्रन्थि में ब्रह्मा-विष्णु-महेश निवास करते है । जो सृष्टिकर्ता प्रजापति का प्रतीक है। जो पवित्र यज्ञोपवीत कहलाता है। उसे विदेशी शिक्षा वशवद विप्र सूत्र का धागा मात्र समझ रहे है ।।१७५ ।।

निर्लिप्ता न्यवसन् पुरा तृणमये यत्रोटजे योगिनः
नादब्रह्मपयोधिजामृतजुषः काषायवस्त्रावृताः ।
तत्रैवाद्य शिलासुधामलतले सौधोपमे ह्याश्रमे
पर्यङ्के नवयन्त्रवाद्यनिनदे माद्यन्ति कौषाम्बराः ॥१७६ ॥

जिन आश्रमो मे पहिले काषाय वस्त्रधारी योगीजन निर्लिप्त प्रभाव से नाद ब्रह्म की आराधना किया करते थे वही आज महलो जैसे भव्य भवनो मे रेशमी वस्त्रधारी पलग पर लेटे सन्यासी आधुनिक मनोरञ्जन साधनो के साथ सुख-सुविधाओ का भोग कर रहे है ॥१७६ ॥

दस्यूनां परिपोषका नृपपदे तन्त्रे नवे संस्थिताः
पूज्या यान्ति पराभवञ्च पुरतः किञ्जीवनानामहो ।
आश्चर्यं यतयोऽपि मन्दमतयो वाजेन तेषां वृताः
कस्तान् नीतिपथं नु सम्प्रति नयेज्जाते विषाक्ते युगे ॥१७७ ॥

हे भारति ! दुर्भाग्य से इस नये शासन तन्त्र मे लुटेरे वञ्चक भी शासक पद पर बैठे हुए है । कुत्सितवृत्ति वाले इन लोगो के आगे, योग्य पुरुष पराजित हो जाते है । आश्चर्य है कि आज का साधु समाज भी उनके अन्न प्रभाव से मन्दमति हो गया है फिर उन्हे कौन न्याय का मार्ग दिखलावे । वस्तुत. आज के पानी मे विष घुल गया है ॥१७७ ॥

एषा संस्कृति-पोषिणी तव सखी यातास्त्युपेक्षापदम्
मुग्धा गौरगिरानने ननु तया संपोषिता पण्डिताः ।
नास्याः दृष्टि पथं नयन्ति तनयान् मुग्धा नवोन्मेषिते,
कुर्वन्तोऽपि च कीर्तनं हि सततं वाचा तु तस्या भृशम् ॥१७८ ॥

हे भारति ! भारतीय सस्कृति का पोषण करने वाली तुम्हारी सखी सुरगिरा भी आज उपेक्षित हो रही है उसके द्वारा परिपालित पण्डित भी गौराङ्गभाषा मुग्ध है वे भी इस युग की नवीनता के लोभ मे अपने पुत्रो को भी उसके दृष्टिपात से दूर रखते है चाहे वे इसके गुणगान कितने ही क्यो न करते हो ॥१७८ ॥

पश्यत्वं भुवि कालकौतुकमिदं कीदृग्युगोपाहितम्
म्लेच्छानां भणितं प्रमाणमधुना नास्मन्मुनीनां मतम्।
कीर्त्यन्ते गणिकाकथास्तु समुदं रुद्धं सतीकीर्तनम्
सम्मानञ्च मिनर्वाऽद्य लभते नो स्मर्यते शारदा ॥१७९॥

हे भारति! इस युग की कैसी विडम्बना है कि म्लेच्छो की वाणी को तो प्रमाणित माना जाता है परन्तु हमारे मुनियो के कथन पर विश्वास नही होता। गणिकाओं की कथाए तो गाई जाती है परन्तु सतियो नाम लेना निषिद्ध है। पश्चिम की मिनर्वा को सम्मान मिलता है परन्तु शारदा का स्मरण नहीं किया जाता ॥१७९॥

लक्ष्मीञ्चापि विलोक्य नो विपथगां नारायणः क्षुभ्यति,
रुष्टा मौनमुपासते भगवती मन्येऽन्नपूर्णाऽप्यहो!।
मत्तेभव्यथितञ्च नन्दनवनं छन्नावनिः कण्टकैः
वाचाला विचरन्ति हृष्टवदनाः खिन्नाननाः पण्डिताः ॥१८०॥

आश्चर्य है कि लक्ष्मी को पथभ्रष्ट देखकर भी नारायण को क्रोध नही आ रहा है। ऐसा प्रतीत होता है अन्नपूर्णा भी रुष्ट होकर चुपचाप बैठी है। आज नन्दनवन मदमत्त हाथियो द्वारा उजाडा जा रहा है। पृथ्वी कष्टकाकीर्ण है। वावदूक प्रसन्न होकर विचरण कर रहे है। पण्डितो के मुख पर उदासी है ॥१८०॥

मन्त्राराधनमन्थरा अपि गता मानास्पदं मन्त्रिणाम्
लज्जन्ते यदुवंशजा अपि न हा! गोग्रास-संचर्वणे।
ये राष्ट्रस्य च रक्षणाय विचितास्ते ते ह्युद्यता भक्षणे
दृष्ट्वैतत् प्रलयंकरोऽपि नु कथं शेते सुखं मन्दिरे ॥१८१॥

राजनैतिक मन्त्रणा के अनभिज्ञो को आज मन्त्रियो द्वारा सम्मानित पद दिया जाता है, गोवश की रक्षा करने वाले यदुवशी ही गोग्रास का भक्षण कर रहे है। जिन्हे राष्ट्र की रक्षा के लिये चुना गया है वे ही राष्ट्र को खा रहे है। आश्चर्य है यह सब देखकर भी भगवान् पलयंकर मन्दिर मे क्यो सो रहे है ॥१८१॥

ये सिंहा इव भाविता नृपपदे जम्बूकतां ते गताः
येषां सत्यपि शासनेऽद्य विपिनं व्यालोड्यते शूकरैः ।
प्लुष्टं काननमेतदद्य सकलं दावानलज्वालया
को दावानलमेनमद्य जलदो धाराभिराशामयेत् ॥१८२ ॥

जिन्हे सिह समझकर राज्य सिहासन पर बिठाया वे तो सियार निकले । उनके ही शासन मे आज सारे वन उपवन सूकरो द्वारा उजाडे जा रहे है । आज कोई ऐसा सजल मेघ नही दिखाई पडता जो दावानल से जलते हुए इस कानन को अपनी जलधारा से बुझा सके ॥१८२ ॥

देवा दानवदण्डभीतिविवशा नार्तिं नृणां शृण्वते
स्वर्गे विप्लवतां गते सुरगुरूर्भीतो गुहां सेवते ।
चन्द्रश्चापि सुधाप्रपानरसिको ग्रस्तोऽस्त्यहो राहुणा
हा ! हा ! स्वर्गभुवं भयेन विकलं रक्षेन्नुको वासवः ॥१८३ ॥

देवता दानवो के दण्ड मे भयभीत है अत वे मानवो की व्यथा नही सुनते । स्वर्ग मे विप्लव होने के कारण देवगुरु बृहस्पति भी गुफा मे जाकर बैठ गये है । सुधापान के रसिक चन्द्रमा को राहु ने ग्रस्त कर दिया है । इस समय ऐसा कोई इन्द्र नही जो भय से व्याकुल इस स्वर्ग की रक्षा कर सके ॥१८३ ॥

स्मर्यन्ते हुतजीवना नहि जनाः स्वातन्त्र्य युद्धाध्वरे
नो वार्तापि च राष्ट्रभक्तिविषया संश्लिष्यते साम्प्रतम् ।
राज्य श्रीमदमूर्च्छिताश्च सुधियः कामार्थमुग्धा अहो !
राष्ट्रं कुत्सितकृत्यकाण्डनिकलं कश्चोद्धरेत् साम्प्रतम् ॥१८४ ॥

स्वतन्त्रता संग्राम मे अपने जीवन की आहुति देने वाले वीरो को आज कोई याद नही करता । राज्य मद मे मतवाले विज्ञ लोग भी काम और अर्थ मे मुग्ध है । आज राष्ट्र भक्ति की बात भी उन्हे अच्छी नही लगती । आज सारा राष्ट्र कुत्सित कर्मो से व्याकुल है । इसका किस प्रकार उद्धार हो यही चिन्ता का विषय है ॥१८४ ॥

सोढाः संकट-कण्टकाः बहुविधाः स्वातन्त्र्यलब्ध्यै पुरा
परवत्ताविवशैः फिरंगिवशगैः राष्ट्रे कथञ्चिज्जनैः।
सह्यन्ते प्रजयाऽधुनापि विविधाः शूलाः स्वराज्येऽप्यहो !
राज्यश्रीमदभाजिनां नहि कुले भेदः क्वचिद्दृश्यते ॥१८५ ॥

हमने स्वतन्त्रता पाने के लिये पूर्व मे अनेक कष्ट सहन किये। उस समय हम अग्रेजो की सत्ता के कारण विवश थे। परन्तु आश्चर्य है कि आज स्वराज्य मे भी प्रजा को अनेक कष्ट सहन करने पड रहे है। इससे ऐसा लगता है कि राजसत्ता के मतवाले चाहे विदेशी हो या स्वदेशी कोई अन्तर नही होता ॥१८५ ॥

शिक्षा-संस्कृति-जीवनोत्सवविधौ खाद्येऽभिवादे तथा
भाषा-भाषण-भूषणे भृतिपदे संकल्पिते शासने।
पाश्चात्यां सरणिं मुदानुचरतां संकोचलेशोऽपि नो
चित्ते विश्वगुरुत्वगौरवकथा स्वीया न संस्मर्यते ॥१८६ ॥

शिक्षा मे सस्कृति मे, किवा जीवन के उत्सवो, खानपान एवं अभिवादन मे, भाषा, भूषा, भाषण, नौकरी यहा तक कि शासन पद्धति मे भी पाश्चा-- पद्धति का अनुकरण करने मे हमे थोडा भी संकोच नही होता। खेद है कि वि‌श्वगुरु कहलाने वाले देश को अपनी गौरव गाथा का जरा भी स्मरण नहीं हो रहा है ॥१८६ ॥

पश्यन्त्वत्र च कालकुण्ठितगतेः सिंहस्य दुर्दैष्टिकम्
ख्यातोऽयं नु मृगाधिपोऽपि मृगयोः पाशंगतः खिद्यते।
कण्ठास्थस्य च चारुकेसरकुलं चर्वन्त्यमीमूषकाः
हा ! कीदृक् हतकालकौतुकमिंद वन्यैर्वनेशोऽर्द्यते ॥१८७ ॥

काल से कुंठित गति वाले इस सिह का दुर्भाग्य देखिये जो मृगाधिपति कहलाता है वह आज शिकारी के बन्धन मे पड़ा दुखी हो रहा है। गले मे हड्डी अटक जाने से विवश इसके बालो को चूहे काट रहे है। समय का कैसा फेर है कि वन का स्वामी वनेचरो से पीड़ित किया जा रहा है ॥१८७ ॥

सदाशाभ्यर्थनम्—

ब्राह्मं वर्च उदेतु विप्रकुलजे शौर्यञ्च क्षत्रान्वये
वैश्यास्त्यागयुता भवन्तु धनिनः सेवाव्रताश्चान्त्यजाः ।
भूयाद् भारति ! भारतं पुनरिदं वर्णाश्रमश्रीयुतम्
विन्द्याद् विश्वगुरुत्वगौरवपदं संकल्पितं सूरिभिः ॥१८८ ॥

हे भारति ! इस भारत भूमि पर पुनः ब्राह्मणो का ब्रह्मवर्चस्व जागृत हो क्षत्रियो मे शौर्य चमके, धनिक वैश्य त्यागी हो तथा शूद्र सेवा परायण बने । यह भारत भूमि पुन. वर्ण व्यवस्था की शोभा धारण करे, और हमारे पूर्वजो द्वारा सकल्पित विश्व गुरुत्व का गौरव पुनः इस पुण्यभूमि भारत को प्राप्त हो । यही मेरी आपसे प्रार्थना है । १८८ ॥

प्रणवपुरनिषण्णा हंसदोलाधिरूढा
ललितवसन वर्णा-वेष्टिता दिव्यरूपा ।
स्मितमधुरमुखाब्जा भारती भूतिदात्री
कलयतु भुवि करुणापूरपूर्णं कटाक्षम् ॥१८९ ॥

प्रणवपुर निवासिनी, हंस दोलाधिरूढा, ललितवर्णवसन धारिणी दिव्यस्वरूपा, समस्त ऐश्वर्य प्रदात्री, भगवती भारती इस विषम समय मे अपने मुख कमल को मन्दहास्य से विकसित करती हुई पुनः हम पर अपनी करुणाभरी दृष्टि डाले ॥१८९ ॥

नानाविद्याविभवजननी मातृकावर्णवेशा
सौम्या रम्या सकलसुरतावैभवं भावयन्ती ।
ब्रह्माण्डस्योद्भवकरपरब्रह्मविष्णवीशरूपा
भूयान्नित्यं नवयुगमुखी भारती सौम्यदृष्टिः ॥१९० ॥

नाना विद्याओ के वैभव की जननी, समस्त देव विभूति धारिणी, सृष्टि, स्थिति सहार कारक ब्रह्मा-विष्णु-महेश स्वरूपा, नवयुगोन्मुखी वह सिद्धमातृका भगवती भारती हम पर सदा अपनी सौम्य दृष्टि बनाए रखे ॥१९० ॥

पञ्चप्राणमयस्त्रिशक्ति सहितः पञ्चामरैर्मण्डितः,
आश्चर्योदयकारको गुणयुतो बिन्दुत्रयेणान्वितः
विद्युद्दीपविभासमानवलयो मोक्षप्रदो ज्ञानिनाम्
नानाशास्त्रपुराणवृत्तजनकः ख्यातोऽक्षरः पातु नः ॥१९१ ॥

तथा पञ्च प्राणमय, इच्छा ज्ञान क्रिया रूप, त्रिशक्तिमान्, पञ्चदेव स्वरूप, विश्व मे आश्चर्य का उदयकर्ता, सत्व रजतमो गुणकर्ता, त्रिविन्दुयुक्त विद्युत्तेजोवलयवेष्टित, ज्ञानियो का मुक्तिदाता, नानापुराण इतिहास का जन्मदाता, अक्षर देवता हमारी रक्षा करे ॥१९१ ॥



भारती

तुहिन विन्दु-सुस्नात-सिक्त-चिरपुलकित-प्रथम-कराभे !
विश्वतिमिर-रक्षस्यवतीर्णे। प्रोज्ज्वलपुण्य-पदाभे ! ॥१ ॥

वसुधा-तल-जन-विहित कुटुम्बे ! अयि वन्द्ये ! जगदम्बे !
सकल विश्व-व्यापृत-शुभरूपे ! चूर्णित-संसृति-दम्भे ! ॥२ ॥

सर्वेभवन्तु सुखिनः इतिमधुरस्वर-गीते !
मुक्ति-समृद्धि-सिद्धि-सुखदायिनि ! मधुरे ! तपःसुपूते ! ॥३ ॥

अयि ! करुणामयि ! हृद्ये ! अम्बर-सम-विस्तृत-हृदये !
प्रकृति-समर्पित-सकल-वैभवे ! शस्यश्यामले सदये ! ॥४ ॥

क्षमात्याग-विजयो-ज्ज्वलवदने ! विभव-पूर्ण-शुभ-सदने।
अयि दधीचिसमवज्रशरीरे ! मत्तासुरकृत-कदने ! ॥५ ॥

शिव-शिबि-शक्र-शकारि पराक्रम-विस्मित-विश्व-विधात्रि !
श्रान्त-कलान्त-दानवतापीडित-मानव-ताप-विहन्त्रि ! ॥६ ॥

मुक्तिदायिनि ! पतितपाविनि ! अयि ! गङ्गे ! विमलाङ्गे !
सगरपुत्र सम-पतित विश्वमयि ! पुनिहि विमल तरङ्गे ! ॥७ ॥

गौतम-कपिल-कणाद-प्राणदे ! विश्वविनोदिनि ! वरदे !
शंकरव्यासमिश्र शुभमतिदे ! अमृतमयि अयि ! शुभदे ! ॥८ ॥

अयि पद्मे ! अयि ! चण्डि सरस्वति ! अयि सीते ! अनुसूये !
कण्ठप्राण-राष्ट्रमिदमव हे ! क्षालित-सर्वासूये ! ॥९ ॥

शक्तिशील-सौन्दर्य समन्वित शुचितररूपोज्ज्वलिते !
पाहि पाहि ! अयि ! भारतमनघे ! भारति ! संस्कृतचरिते ! ॥१० ॥



कवि परिचय



नाम	:	प. श्रीराम दवे
पिता	:	पं. शंकरलाल दवे
जन्मस्थान	:	गांव समदड़ी, जिला-बाडमेर
जन्मतिथि	:	आश्विन कृष्णा प्रतिपद संवत् १९७९ (२२-९-१९२२)
वर्तमान निवास स्थान	:	५५९-बी, 'श्री निकेतन', ८-सी रोड, सरदारपुरा, जोधपुर-३४२००३ (राजस्थान) फोन : ४३२५२०
शिक्षा	:	एम. ए. दर्शन साहित्यशास्त्री, काव्यतीर्थ
व्यवसाय	:	सेवानिवृत्त मैनेजर, स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर जयपुर, जोधपुर शाखा
सम्मान	:	६-८-९० राजस्थान सरकार द्वारा विद्वत् सम्मान; २९-३-९२ राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा "भृत्याभरणम्" महाकाव्य पर "माघ पुरस्कार"; २३-३-९८ राजस्थान संस्कृत अकादमी जयपुर द्वारा विद्वत्सम्मान; २८-९-९८ जोधपुर की विविध संस्थाओं द्वारा नागरिक अभिनन्दन
साहित्य सर्जन महाकाव्य	:	१. भृत्याभरणम्, २. राजलक्ष्मीस्वयवरम्, ३. साकेत संगरम्
खण्डकाव्य	:	१. सौन्दर्यलीलामृतम्, २. वियोगशतकम्, ३. ललिता-लहरी, ४. परिरवायुद्धम्, ५. केलिभूकैतवम्, ६. विनोद कौस्तुभम्, ७. भारतीविलासः, ८. अकिचन चैत्यम् (टॉमस ग्रे कृत Elegy अंग्रेज काव्य का संस्कृत में पद्यानुवाद), ९. यवनीनवनीतम् (उर्दू-कविताओं का सस्कृतानुवाद), १०. अपाङ्ग लीला (संस्कृत खण्डकाव्य)
अनुवाद	:	पं. मधुसूदन ओझा के ब्रह्मसमन्वय, ब्रह्मविनय एवं अत्रिख्याति का हिन्दी अनुवाद
सामाजिक सेवा	:	विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान प्रदेश संघटन मन्त्री "भारती" संस्कृत मासिक जयपुर सह-सम्पादक